बाल महाभारत



[illegible]

सचित्र

बाल-महाभारत

❁

कृष्णचन्द्र बेरी

हिन्दी प्रचारक संस्थान
(व्यवस्था : कृष्णचन्द्र बेरी एण्ड सन्स)
वाराणसी-१ ● कलकत्ता-७

जनवरी १९८२

❋

मूल्य

७=००

प्रकाशक : **विजय प्रकाश बेरी**

हिन्दी प्रचारक संस्थान

पो० बॉक्स नं० १०६, पिशाचमोचन, वाराणसी-२२१००१

मुद्रक : **एन० डी० प्रिंटर्स एण्ड पैकर्स**

एफ-२३, इण्डस्ट्रियल एरिया, रामनगर, वाराणसी।

पूर्व वृत्तान्त

हजारों वर्ष पहले, हमारे देश में एक राजा राज्य करते थे, जिनका नाम ययाति था।

राजा ययाति की मृत्यु के बाद सिंहासन उनके छोटे पुत्र पुरु को मिला। उन्हीं पुरु के वंश में भरत का जन्म हुआ, जो बड़े ही प्रतापी थे। उन्हीं के नाम पर आर्यावर्त का नाम भारतवर्ष हुआ। उनके वंश का नाम भी भरत-वंश पड़ा।

विख्यात भरत-वंश की छठवीं या सातवीं पीढ़ी में महाराजा कुरु हुए और उनके बाद यह वंश 'कुरु-वंश' कहलाया।

इसी प्रसिद्ध कुरु-वंश में शान्तनु नाम के एक महाप्रतापी राजा हुए।

महाराजा शान्तनु का विवाह महारानी गंगा के साथ हुआ। वास्तविक घटना यह थी कि मुनि वशिष्ठ ने किसी कारण से अष्ट वसुओं को यह अभिशाप दिया—'वे मर्त्यलोक में जाकर जन्म-ग्रहण करें।' अष्ट वसु निरुपाय होकर गंगा के पास पहुँचे और बोले—

"माताजी, मर्त्यलोक में कोई भी स्त्री ऐसी नहीं है जो हमें गर्भ में धारण कर सके इसलिए आप हमारी माता बनने की कृपा करें, परन्तु जन्म लेने के साथ ही आप हमें नष्ट कर दें। इससे हमें मर्त्यलोक के दुःख नहीं भोगने पड़ेंगे।"

गंगादेवी ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और अपना विवाह उन्होंने महाराजा शान्तनु से कर लिया। विवाह के पहले उन्होंने महाराजा से प्रतिज्ञा करा ली कि वे कभी उनके किसी भी काम में बाधा न देंगे। यदि कभी भूलकर भी उन्होंने बाधा दी, तो वे उन्हें उसी समय छोड़कर चली जायेंगी।

अस्तु, विवाह के बाद जब पहला पुत्र उत्पन्न हुआ तो गंगादेवी ने तत्काल उसे गंगा में बहा दिया। राजा को रानी के इस अमानुषिक कार्य से विस्मय भी हुआ और दुःख भी। परन्तु अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण कर वे कुछ बोले नहीं। एक के बाद एक रानी के ६ पुत्र और पैदा हुए परन्तु उन पुत्रों को भी गंगादेवी ने उसी प्रकार गंगा में बहा दिया। राजा दिल मसोस कर रह गये।

देवव्रत

परन्तु जब आठवाँ पुत्र पैदा हुआ और गंगादेवी उसे भी गंगा में बहाने के लिए तत्पर हुईं, तो राजा से न रहा गया और उन्होंने गंगादेवी को रोका।

गंगादेवी ने राजा की बात मानकर उस पुत्र को गंगा में न बहाया परन्तु साथ ही वे राजा को छोड़कर चलने के लिए तैयार हुईं।

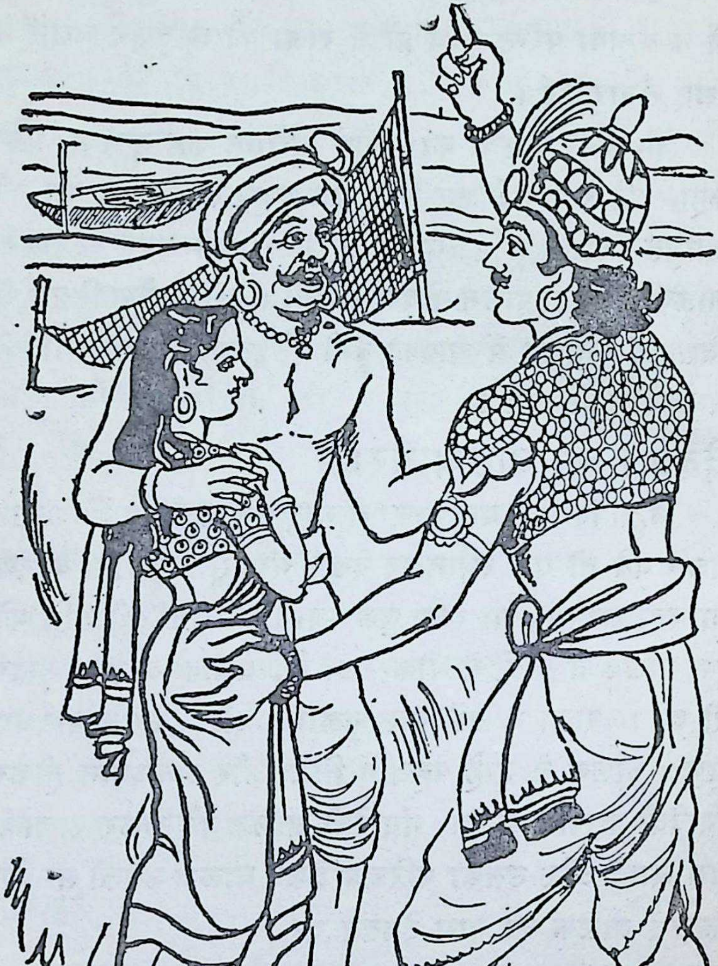
गंगादेवी ने पुत्रों का यथार्थ वृत्तान्त कह सुनाया, फिर कहा—"हे राजन् ! अब मैं आपके कहने से अष्टम वसु को जीवित रखती हूँ। परन्तु अभी मैं उसे अपने साथ ले जाऊँगी, उसका पालन-पोषण करूँगी। उसे प्रत्येक विषय में विशारद बनाकर मैं आपको दूँगी।" इतना कहकर गंगादेवी अन्तर्ध्यान हो गयीं।

देवव्रत की बाल्यावस्था

बहुत दिनों के बाद राजा शान्तनु एक बार वन में शिकार खेलने गये तो एक स्थान पर देखा, गंगा सूखी हुई हैं। कारण का पता लगाया, तो देखा एक स्थान पर गंगा की गति को एक बालक ने तीरों से रोक रखा है। बालक अत्यन्त सुन्दर भी था। राजा ने उसे पास बुलाया और उससे परिचय पूछा। बालक ने उन्हें पहचान लिया और अन्तर्ध्यान होकर गंगादेवी के पास पहुँचा। गंगादेवी बालक को लेकर राजा के पास आयीं और उसका परिचय देकर बालक उनको समर्पण किया। बालक का नाम देवव्रत था।

भीष्म-प्रतिज्ञा

कुछ दिन सुख से बीतने के बाद एक दिन राजा शान्तनु वन में शिकार को गये और वहाँ गंगा के तीर पर दासराज



देवव्रत ने प्रतिज्ञा की—"मैं जीवन-पर्यन्त विवाह न करूँगा।"

की कन्या सत्यवती को देखकर मुग्ध हो गये। उन्होंने दासराज से अपनी इच्छा कही। दासराज ने कहा कि यदि उनकी कन्या सत्यवती का पुत्र राज्य का राजा हो, तभी वे उसका विवाह उनसे कर सकते हैं। देवव्रत के रहते राजा कैसे ऐसी प्रतिज्ञा कर सकते थे ? अतः वे राजधानी को लौट गये। परन्तु सत्यवती से विवाह न होने के कारण वे अत्यन्त उदास रहने लगे। देवव्रत को भी यह बात मालूम हुई। वह उसी समय दासराज के पास उपस्थित हुए और बोले, "मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं कदापि सिंहासन पर न बैठूँगा। आप अपनी कन्या से पिताजी का विवाह कर दीजिये। सत्यवती के गर्भ से जो पुत्र उत्पन्न होगा, वही सिंहासन का अधिकारी होगा।" दासराज ने कुछ सोचकर कहा—"तुमने जो प्रतिज्ञा की है, मुझे विश्वास है कि तुम उसका पालन करोगे, परन्तु जब तुम्हारे पुत्र पैदा होंगे तो वे सिंहासन के लिए सत्यवती के पुत्रों से लड़-झगड़ सकते हैं।"

देवव्रत ने उसी समय सब देवताओं को साक्षी मानकर प्रतिज्ञा की कि वह जीवन-पर्यन्त विवाह न करेंगे। देवव्रत की ऐसी भीषण प्रतिज्ञा को सुनकर सब लोग दंग रह गये। देवव्रत का यह अपूर्व स्वार्थ-त्याग, उनकी अतुलनीय पितृ-भक्ति को देखकर, उनकी भीषण प्रतिज्ञा की बात सुनकर देवतागण भी दाँतों तले उँगली दबाने लगे। उसी दिन से संसार में वे 'भीष्म' नाम से प्रसिद्ध हुये।

अस्तु, दासराज ने सत्यवती का विवाह महाराज शान्तनु के साथ कर दिया। शान्तनु ने अपने पुत्र देवव्रत से प्रसन्न होकर 'इच्छा-मृत्यु' का वरदान दिया। अर्थात् उनकी मृत्यु अपनी इच्छानुसार ही होगी।

कुछ समय के बाद सत्यवती के गर्भ से महाराजा शान्तनु के दो पुत्र पैदा हुए। चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य। विचित्र-वीर्य की बाल्यावस्था में महाराजा शान्तनु परलोक सिधार गये। भीष्म ने चित्राङ्गद को सिंहासन पर बिठा दिया। चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य दोनों को हर तरह की शस्त्रविद्या भीष्म ने स्वयं सिखलायी।

कुछ समय के बाद गन्धर्वराज से युद्ध करने में, चित्राङ्गद मारे गये। भीष्म को विचित्रवीर्य के विवाह की चिन्ता हुई। इसी बीच में उन्होंने सुना कि काशिराज की तीन कन्याओं का विवाह होने वाला है। सत्यवती से परामर्श कर भीष्म काशी पहुँचे। वहाँ तीनों कन्याओं के लिए, स्वयंवर-सभा की व्यवस्था हो रही थी। अनेक देशों के राजा और राजकुमार आये हुए थे। भीष्म ने उन तीनों कन्याओं के साथ विचित्रवीर्य का विवाह करना चाहा। सभा में से उन्होंने उन तीनों को उठाकर अपने रथ पर बिठा लिया और सभा-सदों को सम्बोधन करते हुए कहा—"मैं इन कन्याओं को अपने राजा विचित्रवीर्य के लिए, लिए जा रहा हूँ। यदि किसी राजा को इन कन्याओं के साथ विवाह करने की इच्छा

हो, तो वे मुझे परास्त कर, इन्हें ले जा सकते हैं।" शस्त्रों की झंकारों से सभामण्डप युद्धमण्डप में परिणत हो गया, परन्तु महात्मा भीष्म उन तीनों कन्याओं को लेकर, निर्विघ्न हस्तिनापुर चले आये।

विवाह की तैयारियाँ होने लगीं। इसी बीच में काशिराज की बड़ी कन्या अम्बा ने बतलाया कि वह शाल्वराज को अपना पति मान चुकी है। महात्मा भीष्म ने यथोचित आदर और सम्मान के साथ, उसे शाल्वराज के पास भिजवा दिया। अन्य दो लड़कियों के साथ विचित्रवीर्य का विवाह यथा-समय हो गया और वे सुख से राज्य करने लगे। उन दोनों लड़कियों के नाम अम्बिका, अम्बालिका थे। परन्तु राजघराने में शीघ्र ही शोक के बादल उमड़ आये। विचित्रवीर्य की मृत्यु हो गई। उस समय विचित्रवीर्य की दोनों स्त्रियाँ गर्भवती थीं।

धृतराष्ट्र-पाण्डु

यथा-समय विचित्रवीर्य की दोनों स्त्रियों के गर्भ से एक-एक पुत्र पैदा हुआ। भीष्म ने अम्बिका के पुत्र का नाम धृतराष्ट्र और अम्बालिका के पुत्र का नाम पाण्डु रखा। दुर्भाग्यवश धृतराष्ट्र जन्मान्ध थे, परन्तु भीष्म ने उसकी परवाह न कर, यत्न के साथ उनका पालन किया और उन्हें राजकुलोचित शिक्षा देने में त्रुटि नहीं की। दोनों कुमार

भीष्म की देख-रेख में बड़े होने लगे। भीष्म ने धृतराष्ट्र और पाण्डु को शस्त्र संचालन की अच्छी शिक्षा दी। दोनों कुमार सर्वगुण-सम्पन्न हुए।

अनन्तर धृतराष्ट्र के साथ गान्धार-राज की कन्या गान्धारी का और पाण्डु के साथ यदुराज शूरसेन की कन्या कुन्ती और मद्रराज की पुत्री माद्री का विवाह हुआ। गान्धारी ने जैसे ही सुना कि उनके पति अन्धे हैं, तो उन्होंने भी उसी समय अपनी आँखों पर पट्टी बाँध ली।

विचित्रवीर्य की एक दासी के पुत्र का नाम विदुर था, जो अत्यन्त धार्मिक और बुद्धिमान थे, इसलिए सब लोग उनका बड़ा आदर और सम्मान करते थे। भीष्म ने उनका भी विवाह सुबल राज्य की कन्या के साथ कर दिया।

अनन्तर महाराज पाण्डु ने दिग्विजय के लिए यात्रा की और अपनी असाधारण वीरता से उन्होंने समग्र वसुन्धरा को अपने हस्तगत कर लिया।

धीरे-धीरे कुरुकुल की शाखाएँ बढ़ने लगीं। पाण्डु महिषी कुन्ती के तीन और माद्री के दो पुत्र उत्पन्न हुए और धृतराष्ट्र के १०० पुत्र हुए। कुन्ती के तीन पुत्रों के नाम युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन थे और माद्री के पुत्रों के नाम नकुल और सहदेव थे। धृतराष्ट्र के पुत्रों के नाम दुर्योधन, दुःशासन, कृतवर्मा आदि रखे गये। आगे चलकर पाण्डु के पुत्र पाण्डव और धृतराष्ट्र के पुत्र कौरव के नाम से प्रसिद्ध हुए।

इसके कुछ समय के उपरान्त महाराज पाण्डु की मृत्यु हो गई। माद्री ने अपने दोनों पुत्रों का भार कुन्ती पर सौंप दिया और स्वामी की चिता में जलकर वह सती हो गई। अब अन्धे धृतराष्ट्र ही हस्तिनापुर के सिंहासन पर बैठे।

पाण्डवों की बाल्यावस्था

इधर युधिष्ठिरादि पाँचों पाण्डव हस्तिनापुर के राज-भवन में पलने लगे। पाँचों पाण्डवों की प्रकृति बाल्यकाल से ही कुछ ऐसी थी कि लोग उनका सम्मान करते थे। उनके सरल, शान्त और धर्मोचित व्यवहार से सब प्रसन्न थे। उधर धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधनादि बड़े क्रूर, पापाचारी और ऐश्वर्य-लोलुप निकले। वे अक्सर पाँचों पाण्डवों का अपमान करते और उनके साथ दुश्मनों जैसा व्यवहार करते थे। एक बार उन्होंने भीम को जहर देकर गंगा में डुबो दिया, परन्तु जल की शीतलता से जब उनका जहर उतर गया, तो वे जीते-जागते घर लौट आये।

भीष्म धृतराष्ट्र के पुत्रों को बहुत समझाते थे, गुरु अनेक उपदेश देते थे, परन्तु उन्हें उसकी कुछ भी परवाह न थी।

भीष्म ने आचार्य द्रोण को राजकुमारों की अस्त्र-शिक्षा के लिए नियुक्त किया। आचार्य द्रोण अस्त्र-विद्या में अत्यन्त दक्ष और निपुण थे।

महाराज धृतराष्ट्र के सारथी सुबल का पुत्र कर्ण भी, शिक्षार्थी होकर द्रोण के समीप आया।

धनुर्विद्या में सबसे अधिक उन्नति अर्जुन ने की। यद्यपि कर्ण भी इस विद्या में अत्यन्त निपुण हो गया, परन्तु वह अर्जुन के समान न हो सका। कुछ स्वाभाविक द्वेष के कारण कर्ण की मित्रता अर्जुन की अपेक्षा दुर्योधन से अधिक हो गई।

अनन्तर महात्मा भीष्म ने युधिष्ठिर को राजसिंहासन पर बिठाने का संकल्प किया और वे तदनुसार व्यवस्था करने लगे। भला, यह बात दुर्योधन को कहाँ भा सकती थी ! इससे पाण्डवों के साथ उसकी दुश्मनी और पक्की हो गई।

कौरवों का षड्यन्त्र

गान्धारी के भाई का नाम शकुनि था। वह बड़ा दुष्ट था। छल और कपट में उसका कोई जोड़ न था। पाण्डवों को नीचा दिखाने के लिए दुर्योधन ने शकुनि से सलाह करनी शुरू की। शकुनि ने उनसे कहा—"युद्ध में पाण्डवों को जीतना असम्भव है, इसलिए उन्हें किसी घर में बन्द कर, उसमें आग लगा देनी चाहिए। इससे वे आसानी से मर जायेंगे।"

दुर्योधन ने धृतराष्ट्र को उलटा-सीधा बताना शुरू किया। पुत्र-स्नेह के मोह ने धृतराष्ट्र के हृदय को कलुषित कर डाला और उन्होंने दुर्योधनादि के परामर्श से युधिष्ठिरादि पाँचों पाण्डवों को कुछ दिनों के लिए वारणावत नगर में जाकर

रहने की आज्ञा दी। धर्मराज युधिष्ठिर राजा की आज्ञा को कैसे अमान्य कर सकते थे। अपनी माता और भाइयों के साथ में वे वारणावत को चले गये। परन्तु जाने के पहले विदुर ने दुर्योधन की सारी कुमन्त्रणा का हाल चुपके से उन्हें बताकर सावधान कर दिया।

दुर्योधन ने पुरोचन नामक एक कारीगर को पहिले से ही वारणावत भेज दिया था, जिसने वहाँ लाख, गन्धक आदि जल उठने वाले पदार्थों से एक सुन्दर मकान बनवा रखा था। पाँचों पाण्डव आकर इसी मकान में ठहरे। मकान में एक गुप्त सुरंग भी थी, जिसका पता पाण्डवों ने लगा लिया। निर्णय तो यह हुआ था कि एक दिन इस लाक्षा-भवन में आग लगाकर, पुरोचन सुरंग के रास्ते भाग जायगा, परन्तु विधना का विधान कुछ और ही था। एक दिन अन्धेरी रात में पाँचों पाण्डव उस लाक्षा-गृह से भाग निकले और भीम ने पुरोचन के कमरे में आग लगा दी। अनुकूल पवन से आग घर के चारों ओर फैल गई। पुरवासियों ने जागकर देखा कि लाक्षा-गृह भस्म हो गया है। वे पाण्डवों की लाशों को उस जले हुए घर में ढूँढ़ने लगे। भाग्य की मारी एक निषाद-पत्नी उस रात को अपने पाँच पुत्रों के साथ उसी लाक्षा-गृह में टिक गई थी। उनकी जली हुई ठठरियों को देखकर लोगों को यह दृढ़ विश्वास हो गया कि कुन्ती सहित पाँचों पाण्डव लाक्षा-गृह में जलकर भस्म हो गये।

यथा-समय यह समाचार जब राजधानी में पहुँचा तो पुरवासी शोक से विह्वल हो उठे, परन्तु दुर्योधनादि भ्राताओं को इस समाचार से अपार आनन्द हुआ।

हिडिम्ब-वध

उधर माता सहित पाँचों पाण्डव सुरंग की राह से निकल कर निर्जन वन में जा पहुँचे। वेष आदि बदलकर उन्होंने अपनी सूरत-शकल ऐसी बना ली थी कि कोई उन्हें पहचान न सके।

अनन्तर वे जंगल-जंगल भटकने लगे। एक दिन वे ऐसे स्थान पर जाकर ठहरे, जहाँ पास ही एक शाल का वृक्ष था। उस वृक्ष पर हिडिम्ब नामक एक भयंकर राक्षस अपनी बहिन हिडिम्बा के साथ रहता था। पाण्डवों को देखकर उसके मुँह में पानी भर आया।

हिडिम्बा के शरीर में बहुत बल था। वह उसी समय उस स्थान पर आई जहाँ पाण्डव सो रहे थे। केवल भीम जागकर पहरा दे रहे थे। हिडिम्बा भीम को देखकर मुग्ध हो गई और उसने विवाह करने की इच्छा प्रगट की। इतने में हिडिम्ब भी वहाँ आ गया और उसने पाण्डवों का वध करने की चेष्टा की, परन्तु भीम ने उसकी छाती पर इतनी जोर से गदा का प्रहार किया कि तत्काल उसकी मृत्यु हो गई।

इसके बाद अपनी माता की आज्ञा से भीम ने हिडिम्बा से विवाह कर लिया। यथा-समय उसके गर्भ से एक पुत्र पैदा हुआ जिसका नाम घटोत्कच पड़ा। वह भी अपने पिता की तरह अत्यन्त बलवान और पराक्रमी हुआ।

बकासुर संहार

इसके बाद पाण्डवों को मत्स्य त्रिगर्त और पांचाल देश के वनों में घूमते-घूमते श्री वेदव्यासजी के दर्शन हो गये। उन्हें इस प्रकार जंगलों में भटकते देखकर व्यासजी को दया आई और उन्होंने उन्हें चक्रपुर नामक नगर में अपने एक ब्राह्मण मित्र के घर भेज दिया। ब्राह्मण के घर पाँचों पाण्डव सुख से रहने लगे। भीख माँगकर वे अपना निर्वाह कर लेते थे। उसी नगर में बकासुर नाम का एक राक्षस रहता था। वह रोज एक मनुष्य का भोजन करता था। पहले वह यत्र-तत्र मनुष्यों को मार डालता था और इससे गाँव में बड़ी खलबली मच गई थी। अन्त में नगर के लोगों ने उस राक्षस के साथ यह समझौता किया कि वे रोज एक आदमी को पारी-पारी से राक्षस के पास भेज देंगे। राक्षस को यह प्रस्ताव पसन्द आ गया और उस दिन से रोज एक आदमी पारी-पारी से राक्षस के पास भेज दिया जाता था। जिस ब्राह्मण के घर पाण्डव ठहरे हुए थे, उस ब्राह्मण के घर से राक्षस के पास आदमी भेजने की पारी आ पहुँची।

ब्राह्मण रोने लगा, पर भीम ने उससे कहा—"आज मैं राक्षस के पास जाऊँगा।" ब्राह्मण पहले तो इस प्रस्ताव पर राजी नहीं होता था। उस जमाने में लोग धर्मात्मा हुआ करते थे और अधर्म के लिए जीवित रहना वे व्यर्थ समझते थे। ब्राह्मण को बहुत कुछ समझा-बुझाकर भीम उस राक्षस के पास चले गये। राक्षस जैसे ही उन्हें मारने के लिए आया, तो भीम ने उसे मार गिराया। भीम को वापस आते देखकर सब लोग अत्यन्त प्रसन्न हुए।

द्रौपदी-स्वयंवर

कुछ दिनों बाद एक ब्राह्मण उस घर में अतिथि हुआ, जिसमें पाण्डव ठहरे थे। बातों ही बातों में उसने पाण्डवों से पाञ्चाल राजकन्या द्रौपदी की अत्यन्त प्रशंसा करते हुए बतलाया कि पाञ्चाल देश में, आजकल बड़े ठाठ-बाट से द्रौपदी के स्वयंवर की तैयारी हो रही है।

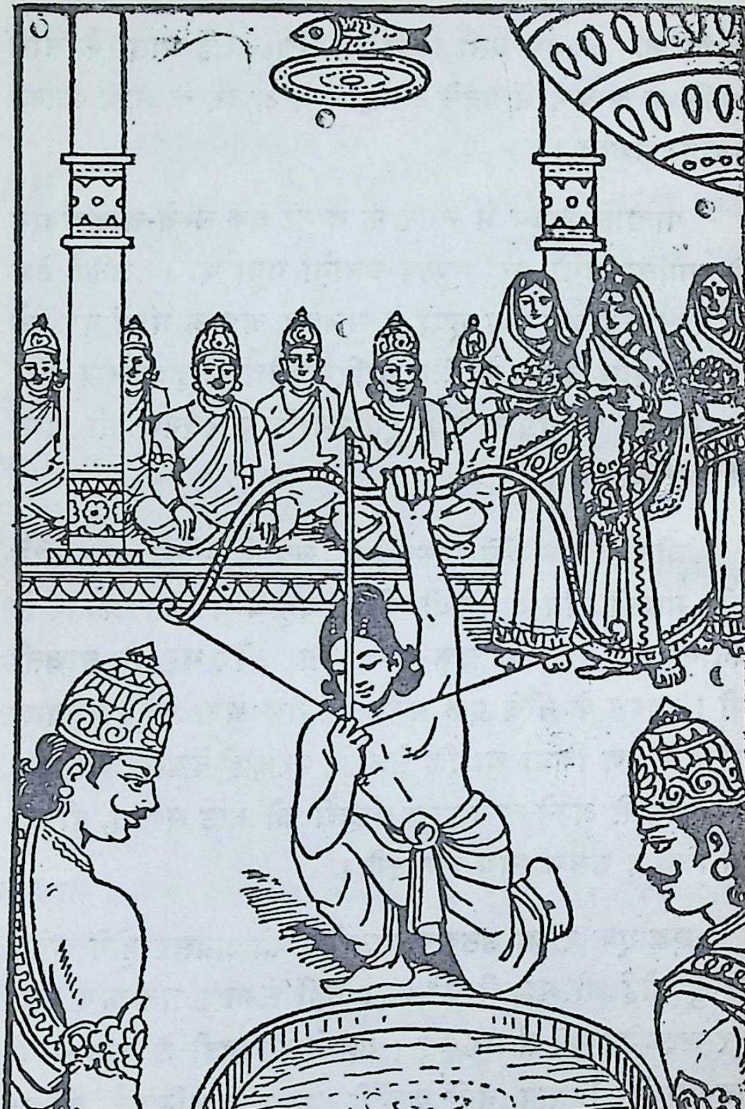
ब्राह्मण के मुख से स्वयंवर का हाल सुनकर पाण्डव भी पाञ्चाल देश को जाने की तैयारी करने लगे और यथा-समय वे पाञ्चाल देश में पहुँच गये। उस समय द्रौपदी के स्वयंवर के बारह दिन बाकी थे। पाञ्चाल देश को जाते समय अर्जुन से राह में अंगारपर्ण नामक एक गन्धर्व से युद्ध हुआ था। अर्जुन ने उसे हरा तो दिया, परन्तु मारा नहीं। गन्धर्व ने प्रसन्न होकर एक दिव्य अस्त्र दिया और उन्हें धौम्य

ऋषि का आश्रम बता दिया। पाँचों भाई माता के साथ ऋषि के आश्रम में पहुँचे। ऋषि ने आदर के साथ उनका स्वागत किया।

पाञ्चाल राज्य में नगर के बाहर एक लम्बे-चौड़े मैदान में स्वयंवर सभा का मण्डप बनाया गया था। अनेक देश के राजा विचित्र वेश-भूषा से सजकर जड़ाऊ मंचों पर बैठे थे। स्वयंवर देखने के लिए द्वारिकाधीश श्रीकृष्णचन्द्र और बलरामजी भी पधारे थे। दुर्योधनादि कौरवगण भी सभा में उपस्थित थे।

बीच में एक ऊँचे स्तम्भ पर चक्र के भीतर एक सोने की मछली टाँग दी गयी थी। वह यन्त्र इस प्रकार से बनाया गया था कि चक्र घूमता था और मछली नाचती थी। स्तम्भ के नीचे एक बर्तन में तेल भरा था। पाञ्चाल नरेश ने प्रण किया था कि तेल में परछाईं देखकर जो चक्र के अन्दर से अपने बाण द्वारा मछली को काट सकेगा, द्रौपदी का विवाह उसके साथ कर देंगे।

एक-एक राजा उठकर लक्ष्यभेद को अग्रसर होने लगे। परन्तु कोई भी मछली को काट नहीं सका। तब कर्ण उठकर लक्ष्यभेद को तैयार हुए। यह देख द्रौपदी ने कहा—"मैं सूत-पुत्र से विवाह नहीं करूँगी।" कर्ण लज्जित होकर अपने आसन पर जा बैठा।



देखते-देखते अर्जुन ने लक्ष्य-भेद कर दिया

पाण्डव भी दरिद्र ब्राह्मण के वेश में एक स्थान पर बैठे थे। जब एक-एक कर सब राजा हतोत्साह हो गये, तब अर्जुन से न रहा गया। वे ब्राह्मणों को प्रणाम कर उठ खड़े हुए और देखते-देखते उन्होंने लक्ष्यभेद कर दिया। मछली कटकर गिर पड़ी।

सभा में हलचल मच गयी। बाजे जोर से बजने लगे। राजाओं ने अपना सिर नीचा कर लिया। अर्जुन के सिर पर फूलों की बौछार होने लगी। कृष्णा अर्थात् द्रौपदी ने उसी समय उनके गले में वरमाला डाल दी।

परन्तु दुर्योधन उछल-कूद मचाने लगा। उसने कहा—“जिसके कुल का कोई परिचय नहीं मालूम उसके साथ द्रौपदी का विवाह नहीं हो सकता।”

भीम से रहा नहीं गया, वह फौरन उठ खड़े हुए और गदा घुमाते हुए बोले—“जिसे हमारा परिचय मालूम करना हो, वह मेरे सामने आ जाय।”

भीम की उस मूर्ति को देखकर उपस्थित राजाओं का हृदय धड़कने लगा। परन्तु युधिष्ठिर ने भीम को शान्त किया और सभा में अपना परिचय दिया। उनका यथार्थ परिचय पाकर राजा द्रुपद के हर्ष की सीमा न रही। दुर्योधन ने मुँह की खायी।

द्रौपदी को साथ लेकर पाण्डव घर गये। दरवाजे के पास पहुँचकर वे अपनी माता से बोले—"माता आज हम एक बड़ी सुन्दर वस्तु लाये हैं।"

कुन्ती ने अन्दर से ही जवाब दिया—"सब मिलकर ले लो।"

अतः माती की आज्ञा से पाँचों भाइयों ने द्रौपदी के साथ विवाह किया। उस जमाने में माता-पिता की आज्ञा को लोग भगवान की आज्ञा समझते थे।

पाण्डवों को राज्य-प्राप्ति

दुर्योधन को बड़ी परेशानी थी। उसने जिन पाण्डवों को मरा समझ लिया था, उन्हें वह जीवित देख आया था। इधर पितामह भीष्म ने धृतराष्ट्र को मजबूत किया कि वे पाण्डवों को बुलाकर आधा राज्य सौंप दें। दुर्योधन ने हजार कोशिशें कीं कि ऐसा न हो सके, परन्तु महात्मा भीष्म की आज्ञा की अवहेलना करने की शक्ति किसी में न थी।

पाण्डव लौट आये। पुरवासी गण उनके लौटने से प्रसन्न होकर खुशियाँ मनाने लगे।

पाण्डवों की नयी राजधानी इन्द्रप्रस्थ (वर्त्तमान दिल्ली) में बनी। नया नगर बस गया और बड़े-बड़े प्रतिष्ठित व्यक्ति जाकर उस नगर में रहने लगे।

पाण्डव वहाँ सुख से राज्य करने लगे।

अर्जुन-वनवास

एक दिन एक चोर ने किसी ब्राह्मण की गाय चुरा ली। उसने जाकर अर्जुन के पास फरियाद की। अर्जुन उसकी फरियाद सुनकर फौरन गो-चोर की हत्या करने के लिये तैयार हो गये। द्रौपदी के कमरे में उनका अस्त्र रखा था, परन्तु उस कमरे में उस समय युधिष्ठिर थे और नियम यह था कि एक पाण्डव के कमरे में रहते वहाँ दूसरा पाण्डव नहीं जायगा। लेकिन यहाँ यदि गो की रक्षा न करें तो भी धर्म जाय। अर्जुन को नियम के खिलाफ उस कमरे में जाकर शस्त्र का अनुसन्धान करना पड़ा।

अर्जुन ने ब्राह्मण की गाय का उद्धार कर गाय उसे दे दी और नियम-भंग के अपराध का प्रायश्चित्त करने वन को चले गये। मार्ग में उन्होंने नागराज की कन्या उलूपी से अपना ब्याह कर लिया। अनन्तर मणिपुर राज्य-कन्या चित्राङ्गदा से विवाह किया। मणिपुर में चित्राङ्गदा के गर्भ से उनके एक पुत्र पैदा हुआ, जिसका नाम बभ्रुवाहन पड़ा।

अनन्तर प्रवास-क्षेत्र में अर्जुन की श्रीकृष्ण भगवान से भेंट हो गयी। श्रीकृष्ण के साथ वे द्वारकापुरी चले गये। श्रीकृष्ण की एक बहन थी जिसका नाम सुभद्रा था। बलरामजी उसका ब्याह दुर्योधन से करना चाहते थे, क्योंकि वह चक्रवर्ती राजा था और साथ ही उन्होंने उसे गदा चलाना

सिखाया था। श्रीकृष्ण दुर्योधन की चालों को पसन्द नहीं करते थे, इसलिये उन्होंने अपने सखा अर्जुन को कुछ इशारा कर दिया, इसका परिणाम यह हुआ कि एक दिन रात को अर्जुन सुभद्रा को रथ पर बिठाकर चल दिये।

सुभद्रा के गर्भ से उनके एक पुत्र पैदा हुआ जिसका नाम अभिमन्यु पड़ा।

खाण्डव-वन दाह

एक दिन भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुन बैठे बातचीत कर रहे थे कि इसी समय अग्निदेव वहाँ ब्राह्मण का रूप धर कर आये। ब्राह्मण ने भोजन की इच्छा प्रकट की। अर्जुन ने उनसे पूछा कि वे भोजन के लिये क्या चाहते हैं? उन्होंने खाण्डव वन माँगा। अर्जुन ने दे दिया। ब्राह्मण ने स्वमूर्ति धारण कर ली। वन जलने लगा। देखते-देखते सारा जंगल जलकर भस्म हो गया। इससे उस स्थान पर एक बहुत बड़ी जगह खाली हो गयी और वहाँ एक सुन्दर नगर बसा।

राजसूय-यज्ञ

अग्नि के उस प्रचण्ड प्रकोप से केवल छः जीव बचे थे--तक्षक, मयासुर और मन्दपाल मुनि के चार पुत्र, जो पक्षी के रूप में वहाँ रहते थे।

मयासुर ने अपनी जीवन-रक्षा के लिये अर्जुन को धन्यवाद दिया, और उनका कुछ उपकार करना चाहा।

श्रीकृष्ण ने उससे ऐसा भवन युधिष्ठिर के लिये बना देने को कहा, जिसका जोड़ा तीनों लोक में न हो।

श्रीकृष्ण की आज्ञा पाकर एक बड़ा ही सुन्दर भवन बना। मय कैलास पर्वत से जाकर बहुत-सा मणि-माणिक्यादि ले आया था, जो उसने भवन को सजाने में लगा दिया। मय कैलास से दो चीजें और लाया था। एक गदा और देवदत्त नामक शङ्ख। गदा तो भीम ने ली और शङ्ख अर्जुन को मिला।

सभा बन जाने के बाद एक दिन नारद मुनि आ पहुँचे और उन्होंने युधिष्ठिर को अनेक धर्मोपदेश देकर राजसूय यज्ञ का फल बतलाया। नारद मुनि चले गये और युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ करने का विचार पक्का कर लिया।

युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण के सामने जब अपना अभिप्राय कहा तो उन्होंने जवाब दिया कि राजसूय-यज्ञ वही कर सकता है जो सब राजाओं को युद्ध में परास्त करे अथवा उन्हें अपना अनुगत बना ले। परन्तु जरासन्ध के रहते राजसूय यज्ञ करना दूसरे के लिये सम्भव नहीं है, कारण राजसूय यज्ञ करने के अभिप्राय से उसने अनेक राजाओं को अपना बन्दी बना लिया है। उसकी इच्छा है कि सौ राजा जब बन्दी हो जायेंगे तो वह यज्ञ में उनकी बलि देगा। तब तक छियासी राजा बन्दी किये जा चुके थे। चौदह राजाओं की और कमी थी।

जरासन्ध को अजेय समझकर युधिष्ठिर यज्ञ करने का संकल्प छोड़ने लगे। श्रीकृष्ण और अर्जुन ने बड़े ओजपूर्ण शब्दों में युधिष्ठिर को आशा दिलाई, तो युधिष्ठिर ने भीम और अर्जुन को जरासन्ध को मारने की आज्ञा दी। आज्ञा पाकर श्रीकृष्ण के साथ भीम और अर्जुन मगध देश की ओर चल पड़े।

श्रीकृष्ण ने जरासन्ध के दरबार में जाकर जरासन्ध को युद्ध के लिये ललकारा, तथा सब बन्दी राजाओं को मुक्त करके महाराज युधिष्ठिर की दासता स्वीकार करने को कहा।

भला मदान्ध जरासन्ध ऐसे वाक्यों को कब सुन सकता था, तुरन्त युद्ध के लिये तैयार हो गया। श्रीकृष्ण ने तीनों में से एक को चुन लेने के लिये कहा। जरासन्ध ने भीम को ही सबसे अधिक हृष्ट-पुष्ट पाया, इसीलिये उसी को लड़ने

के लिये चुन लिया। दोनों ही बड़े बलिष्ठ और वीर थे इसीलिए कई दिनों तक युद्ध बड़े भयंकर रूप से चलता रहा। एक दिन मौका पाकर भीम ने जरासन्ध को जमीन पर दे पटका और श्रीकृष्ण के इशारे से उसकी एक टाँग पकड़ लात पर लात धर कर उसे बीच से चीर दिया।

यज्ञ का आरम्भ

जरासन्ध के मरने पर श्रीकृष्ण ने सब बन्दी राजाओं को मुक्त कर दिया। बन्दी राजाओं ने मुक्त होते ही महाराज युधिष्ठिर की अधीनता स्वीकार कर ली और युधिष्ठिर को बहुत से रत्नालंकार भेंट चढ़ाये। श्रीकृष्ण जरासन्ध के पुत्र सहदेव को मगध की गद्दी पर बिठाकर बहुत-सा धन-द्रव्यादि साथ लेकर लौट आये।

युधिष्ठिर जरासन्ध के वध से बहुत प्रसन्न हुये। उन्होंने भीम, अर्जुनादि सब भाइयों को दिग्विजय की आज्ञा दी। चारों भाइयों ने सहज में ही दिग्विजय कर ली तथा अपने साथ में प्रभूत धन-सम्पत्ति भी ले आये।

अब तो यज्ञ की तैयारियाँ बड़े ठाठ-बाट से होने लगीं। यज्ञ के द्रव्यों से सारा खाण्डवप्रस्थ भर गया। चारों वर्णों के लोगों को निमन्त्रण दिया गया। हस्तिनापुर से भीष्म, द्रोण, धृतराष्ट्र, विदुर तथा दुर्योधनादि सौ भाई बुलाए गये।

नियत समय पर यज्ञ आरम्भ हो गया। सब लोगों को विविध कार्य-भार सौंप दिया गया। दुर्योधन को दान-दक्षिणा

देने का कार्य सौंपा गया। भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं ब्राह्मणों के पैर धोने का भार ग्रहण किया।

अभिषेक के दिन ब्रह्मर्षि, देवर्षि, राजर्षि, ब्राह्मण तथा सब राजा लोग सभामण्डप की शोभा बढ़ा रहे थे। देवर्षि नारद ने एक दीर्घ नि:श्वास से यह सूचित किया कि क्षत्रिय-बल परस्पर की ईर्ष्या से नष्ट होनेवाला है।

शिशुपाल-वध

जब अर्घ्य प्रदान करने का समय आया, तो इस बात का अनुसन्धान होने लगा कि सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति कौन है? वयोवृद्ध भीष्म पितामह ने श्रीकृष्ण को ही सर्वश्रेष्ठ बताया और तदनुसार युधिष्ठिर श्रीकृष्ण की पूजा करने लगे।

चेदिराज शिशुपाल ने जब यह देखा कि श्रीकृष्ण की पूजा हो रही है, तो वह एकदम आग-बबूला हो गया। श्रीकृष्ण को लगातार कटु वाक्य कहता ही गया। जब श्रीकृष्ण ने देखा कि यज्ञ के कार्य में गड़बड़ी हो रही है तो उन्होंने उसका शिरच्छेद कर दिया। इसके पश्चात् यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हो गया।

शिशुपाल की अन्त्येष्टि-क्रिया युधिष्ठिर की आज्ञा से बड़े धूमधाम से की गई और उसके पुत्र को उसके स्थान पर अभिषिक्त कर दिया गया तथा राजा लोग अपने-अपने स्थानों को लौट गये। श्रीकृष्ण भी द्वारिका चले गये। अपने मामा शकुनि के साथ अब केवल दुर्योधन ही वहाँ रह गया।

दुर्योधन की ईर्ष्या

राज-प्रासाद की भव्यता ने दुर्योधन के आत्माभिमान को बड़ा भारी धक्का लगाया। भवन इतने स्वच्छ स्फटिकों से निर्मित था कि जल में स्थल और स्थल में जल की भ्रान्ति होती थी। एक बार जब दुर्योधन स्थल समझकर आगे बढ़ रहा था तो वह जल में धम्म से गिर पड़ा। इसको देखकर सब लोग खिलखिला कर हँस पड़े। दुर्योधन को पांडवों का हँसना बहुत बुरा लगा और वह हस्तिनापुर लौट आया।

पांडवों का अभ्युदय दुर्योधन के हृदय में शूल की तरह चुभ रहा था। इस हँसी ने जले घाव के ऊपर नमक का काम किया। राजसूय यज्ञ से जो उनका यश दिग्दिगन्तर में पहुँच गया, उसने तो दुर्योधन की ईर्ष्या की आग एकदम भभका दी। उसने अपने मामा शकुनि से इस विषय में सलाह ली कि पांडवों का ऐश्वर्य नष्ट किया जाय।

शकुनि ने दुर्योधन को सलाह दी कि पांडवों को युद्ध में हराना तो बड़ी टेढ़ी खीर है, छल से काम लेना चाहिए। युधिष्ठिर को जुआ खेलने के लिए बुलावा भेज दो, फिर क्या है ? बस, पौ बारह है।

दुर्योधन के मन में यह बात भर गई। वे दोनों धृत-राष्ट्र के पास गये और सब वृत्तान्त सुना दिया।

सर्वनाश का सूत्रपात

धृतराष्ट्र ने पहले तो सलाह न दी परन्तु जब दुर्योधन ने कहा, "पांडवों ने घर बुलाकर मेरा अपमान किया है और यदि आप आज्ञा न देंगे तो मैं आत्महत्या कर लूँगा।" तो लाचार होकर धृतराष्ट्र को स्वीकृति देनी पड़ी।

जब विदुर को यह समाचार ज्ञात हुआ तो उसने धृतराष्ट्र को ऐसा न करने की सलाह दी। परन्तु दुर्योधन के हठ के आगे किसकी चलती ?

धृतराष्ट्र ने विदुर को आज्ञा दी कि वे पांडवों को बुला लायें। पांडव द्रौपदी सहित आ गये।

जुआ होने लगा। शकुनि ने देखते-देखते अपने हाथ की सफाई से युधिष्ठिर का सारा धन जीत लिया। थोड़ी देर में युधिष्ठिर हाथी-घोड़े, नौकर-चाकर सब कुछ हार गये। युधिष्ठिर इससे और भी खिसिया गये। उन्होंने धीरे-धीरे अपने भाइयों को भी दाँव पर लगा दिया और उनको भी हार गये। अब तो युधिष्ठिर की विचित्र अवस्था हो गयी। उनका विवेक नष्ट हो गया, बुद्धि भ्रष्ट हो गई। जब उनके पास और कुछ भी शेष न रह गया तो उन्होंने द्रौपदी को ही दाँव पर लगा दिया। इस समय सञ्जय के मुख से अपने पुत्रों की जीत सुनकर धृतराष्ट्र फूला न समाता था।

द्रौपदी-वस्त्र-हरण

युधिष्ठिर द्रौपदी को भी हार गये। अपनी स्वतन्त्रता भी खो दी। अब तो कौरवों का दिल बाँसों उछलने लगा। दुर्योधन ने एक बार कटाक्ष करते हुए विदुर की ओर देखा और उनको दरबार में द्रौपदी को उपस्थित करने की आज्ञा दी। विदुर ने आज्ञा सुनकर गर्दन नीचे डाल दी।

परन्तु दुःशासन कब माननेवाला था। झटपट अन्तःपुर के अन्दर चलागया। उस समय द्रौपदी रजस्वला थी। वह लज्जावश सभामण्डप में नहीं आना चाहती थी। वह दुःशासन के आगे बहुत रोई-गिड़गिड़ाई, परन्तु उसके हृदय में दया का स्थान कहाँ था? बाल पकड़कर, रोती-बिलखाती द्रौपदी को खींचते हुए दुःशासन सभा-भवन में ले आया। द्रौपदी का कलेजा फटने लगा। उसने कातर कण्ठ से सब लोगों से बिनती की। द्रौपदी की इस करुण अवस्था को देखकर पांडवों का रक्त खौल उठा, परन्तु करते क्या? मन्त्रबद्ध सर्प की तरह अपनी जगह पर खड़े रहे। दुःशासन ने द्रौपदी की साड़ी पकड़ ली और उसे खींचता हुआ कहने लगा, "अब सेवा करो सेवा।" इस प्रकार कहता जाता था और हँसता जाता था। कर्ण ने इस समय मौका पाकर ताना कसना शुरू किया, "क्यों द्रौपदी! तुमने तो मेरी सूत-पुत्र कहकर निन्दा की थी, अब उसका फल भोगो।"

दुर्योधन ने भी कहना प्रारम्भ किया, "क्यों द्रौपदी ! तुमने तो सभा-भवन में मेरी हँसी की थी और मुझे जल में गिरा देखकर खिलखिलाकर हँसी थी, यह उसी का फल है।"

अनन्तर कर्ण ने कहा—"पांडव और द्रौपदी जुए में हार गये हैं, इनके आभूषण-वस्त्रादि उतार लेना चाहिए।" यह सुनकर पाँचों भाइयों ने तो अपने-अपने आभूषण-वस्त्र उतार कर रख दिये। द्रौपदी केवल एक साड़ी पहिने थी। वह उसको भी कैसे उतारती ? परन्तु नीच दुःशासन ने उसको भी उतारना चाहा और उसकी साड़ी पकड़कर खींचना शुरू कर दिया। जब द्रौपदी ने देखा कि दुःशासन उसे नंगी करने का यत्न कर रहा है, और कोई आश्रय नहीं है तो उसने आँखें बन्द कर लीं। भगवान के ध्यान में एकदम लीन हो गई। अब भगवान को छोड़कर अन्य आश्रय ही क्या था ? भगवान ने भक्त की तुरंत सहायता की। साड़ी खींचते-खींचते दुःशासन का हाथ थक गया। उसके शरीर से पसीने की धारा बह निकली। कपड़े का ढेर लग गया और अन्त में दुःशासन को हार मानकर छोड़ देना पड़ा।

इस नीच कृत्य को देखकर भीमसेन आपे में न रह सके और उन्होंने उसी समय प्रतिज्ञा की, "जिन हाथों से इस नीच दुःशासन ने यह अपमान किया है, उनको तोड़ दूँगा और उसका हृदय चीरकर रक्तपान करूँगा।"



कृष्ण द्वारा द्रौपदी की लाज-रक्षा

यह सुनकर दुर्योधन एकदम खिलखिला कर हँस पड़ा और पांडवों को खिझाने के लिए उसने द्रौपदी को अपनी जाँघ की ओर संकेत करते हुए उस पर बैठने को कहा।

भीम ने जब यह देखा तो वह क्रोध से पागल हो गये और उन्होंने प्रतिज्ञा की, "यदि उन जाँघों को युद्ध में तोड़ न दूँगा तो क्षत्रिय कहलाना छोड़ दूँगा।"

विदुर ने जब इन प्रतिज्ञाओं को सुना तो महाराज धृतराष्ट्र से कहा, "महाराज अब भी इन पापाचारों को बन्द कराइये अन्यथा क्षत्रिय कुल समूल नष्ट हो जायगा और जो लोग भी वहाँ पर बैठे थे, सबने धृतराष्ट्र के पुत्रों को धिक्कारते हुए धृतराष्ट्र से इस पापाचार को रोकने को कहा। अन्त में धृतराष्ट्र ने द्रौपदी की ओर संकेत कर कहा—"बेटी ! मैं तुम्हारे साधु-स्वभाव से बड़ा प्रसन्न हूँ। माँग तुझे क्या चाहिये ?"

द्रौपदी ने कहा—"मैं अपने पति की अर्धाङ्गिनी हूँ। पति का मेरे आधे शरीर के ऊपर हक है। मैं आधी हारी जा चुकी हूँ, परन्तु आधी अभी स्वतन्त्र हूँ। मैं चाहती हूँ कि मुझे जुआ खेलने की अनुमति दी जाय और तब मेरे पतियों को दास बनाया जाय।" धृतराष्ट्र ने द्रौपदी की इस प्रार्थना को स्वीकार कर लिया। द्रौपदी ने इन नीचों के साथ हाथ से जुआ खेलने में भी अपमान समझा और बायें

पैर से खेलने लगी। उसने जुए में स्वयं अपने को तथा अपने पाँचों पतियों को स्वतन्त्र कर लिया और अपना सारा धन-दौलत भी ले लिया, फिर स्वतन्त्र होने के पश्चात् वे सब लोग वहाँ से खांडवप्रस्थ की ओर चल दिये।

दुर्मति दुःशासन के साथ सब लोग दुर्योधन के पास पहुँचे और उन्होंने दुर्योधन से जाकर कहा कि यह तो करा-कराया सब गुड़-गोबर हो गया। दुर्योधन के मन में यह बात बैठ गई और वह बड़ा चिन्तित एवं दुःखित हो गया तथा धृतराष्ट्र के पास जाकर बोला, "पिताजी ! आपने सुना—भीम, अर्जुनादि अभी से अस्त्र-शस्त्रों को पैना कर रहे हैं। उन दुष्टों को तो आराम से बैठने का मौका ही देना नहीं चाहिये।"

यह सुनकर धृतराष्ट्र ने कहा, "अब क्या किया जाय ? दुर्योधन ने कहा कि—"किया क्या जाय—फिर जुआ खेलने के लिए बुलाइये और इस बार का दाँव वनवास का होगा अर्थात् जो हारेगा उसे बारह वर्ष छिपकर रहना होगा और यदि कहीं तेरहवें वर्ष में पहचान लिया गया तो फिर बारह वर्ष वन में रहना होगा। इस प्रकार अब दंगे-फसाद का कोई काम न रह जायगा।"

पुत्र-स्नेह ने धृतराष्ट्र को बाध्य किया कि वह पांडवों को फिर बुलावें। क्षत्रिय लोग युद्ध और जुए के निमन्त्रण को अस्वीकार नहीं करते और फलतः युधिष्ठिर फिर से आ

गये और पूर्ववत् इस बार भी जुए में हार गये तथा शर्त के अनुसार बारह वर्ष का वनवास और एक वर्ष के अज्ञातवास के लिए मृगचर्मादि पहन कर चल दिये।

पाण्डव-प्रतिज्ञा

मृगचर्मादि वनोचित वेश में पांडव वन में चल दिये। यह देखकर धृतराष्ट्र के सभी पुत्रों को आनन्द हुआ और विशेषकर दुर्योधन ने उनको वन जाते देख अनेक व्यङ्ग भरे वाक्य कहे। यह सुनकर भीम अपने क्रोध को न रोक सके और उन्होंने उन लोगों के सामने ही रणक्षेत्र में इन कुवाक्यों का बदला लेने की प्रतिज्ञा की।

दुःशासन को इससे और भी बोलने का मौका मिल गया और उसने भीम से कहा—"जाकर मुँह धो आ!" इस पर क्रुद्ध होकर अर्जुन ने कहा—"अरे पापियों! जिस कर्ण के बल पर तुमको इतना घमण्ड है उसको रण में जीता न छोड़ूँगा।" तदनन्तर नकुल और सहदेव ने प्रतिज्ञा की कि जिस दुराचारी शकुनि के कारण इतना सब हुआ है उसको कभी भी जीता न छोड़ेंगे।

धृतराष्ट्र ने कुछ न कहा। विदुर के यहाँ माता कुन्ती को रखकर द्रौपदी और धौम्य पुरोहित के साथ पांडव वन को चल दिये।

विदुर ने आकर धृतराष्ट्र को बताया कि वे लोग बड़े विचित्र भाव से जा रहे थे। युधिष्ठिर ने अपनी आँखें मूँद

ली थीं, भीम भुजाओं को निरखते थे, अर्जुन मार्ग में धूल उड़ाते जाते थे, सहदेव ने मुँह पर स्याही पोत ली थी और नकुल ने सारा शरीर धूल से धूसरित कर लिया था। द्रौपदी लाल नेत्र किये बाल बिखेरे जा रही थी।

यह सुनकर अंधराज आनेवाले भय से भयभीत हो गया। परन्तु चण्डाल-चौकड़ी पर इसका कुछ प्रभाव न पड़ा।

किर्मीर-वध

पाण्डव लोग शर्त के अनुसार वन को जाने लगे। प्रजा में जब समाचार पहुँचा तो सब लोग इनके साथ वन को चलने लगे। युधिष्ठिर के बहुत मना करने पर और लोग तो चले गये परन्तु ब्राह्मण लोगों ने साथ नहीं छोड़ा। महाराज युधिष्ठिर ने जब देखा कि अपने ही भोजन की समस्या जटिल है तो इनको कहाँ से खिलाया जायगा, तो राजा युधिष्ठिर ने ब्राह्मणों से पूछा कि अब आप ही बतलाइये कि क्या होना चाहिये ? ब्राह्मणों ने कहा आप सूर्य की उपासना कीजिये। युधिष्ठिर ने जाकर तपस्या की। सूर्य देवता उनसे प्रसन्न हो गये और उन्होंने एक बर्तन दिया, जिससे कि पांडवों को फिर अन्न-कष्ट न हुआ। पाण्डव इस बर्तन को लेकर अन्य सब जनों के साथ काम्यक वन पहुँचे। काम्यक वन बड़ा भयानक वन था। वहाँ सिंह, व्याघ्रादि अनेक हिंसक जीव निवास करते थे। पाण्डव जब वहाँ पहुँचे तो मध्य निशा का समय था। इसी समय सहसा पाण्डवों ने एक विशालकाय राक्षस को देखा, जो कि उनके मार्ग को रोक कर घनघोर गर्जना कर रहा था। द्रौपदी भयभीत हो गयी। युधिष्ठिर ने आगे बढ़कर पूछा—"तुम कौन हो ?"

इस पर राक्षस ने उत्तर दिया—"मेरा नाम किर्मीर है। इस समय भूख के मारे मेरी जान निकल रही है। तुम लोगों को खाकर अपनी भूख मिटाऊँगा।"

भीमसेन ने कहा—"हट जा यहाँ से। नहीं तो जान से भी हाथ धोना पड़ेगा।"

राक्षस ने भीम को पहचानते हुए कहा—"आज तो अपने भाई बक और हिडिम्ब का बदला चुकाने का अच्छा अवसर मिला।" इतना कह कर वह राक्षस भीम के ऊपर झपटा। भीम पहले से ही तैयार थे। दोनों में घमासान युद्ध होने लगा। किर्मीर अब लड़ते-लड़ते कुछ थक-सा गया था। भीम ने मौका पाकर उसे उठाकर जमीन पर दे पटका और उसको मार डाला और उसके बाद पांडव वहीं रहने लगे।

क्षमा की जय

विदुर धृतराष्ट्र के सम्मुख हमेशा पाण्डवों का पक्ष लेकर कुछ-न-कुछ कहा करते थे, इससे एक दिन धृतराष्ट्र ने क्रोधित होकर राज्य से निकल जाने की आज्ञा दी। विदुर निकल कर पाण्डवों को खोजते-खोजते काम्यक वन में आये और उन्हीं के साथ रहने लगे।

धृतराष्ट्र ने जब शान्त चित्त से विचार किया, तो उन्हें अपनी करनी पर पश्चात्ताप हुआ। उन्होंने सञ्जय को विदुर को बुला लाने के लिए भेजा। सञ्जय जाकर विदुर को बुला लाया।

इधर पाण्डव लोग जंगलों में भटकते हुए अपने वनवास के दिन पूरे करने लगे।

जब अन्य राजाओं को यह बात मालूम हुई कि दुर्योधन से जुए में हारकर पाण्डव लोग वनों में भटक रहे हैं, तो उन्होंने महाराज युधिष्ठिर के पास समाचार भेजा कि वे कौरवों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दें और वे लोग सहायता करेंगे।

ऐसे समाचारों को सुनकर भी युधिष्ठिर जब ज्यों के त्यों बने रहे तो एक दिन द्रौपदी ने महाराज युधिष्ठिर से कहा—"महाराज ! मुझे इस बात का बड़ा आश्चर्य है कि जिस दुर्योधन ने हम लोगों को इतना कष्ट दिया, राज-पाट, सुख-सम्पत्ति सब का हरण कर लिया, उसके प्रति आपको क्रोध नहीं आता। क्या इसी प्रकार जंगलों में भटकना आपको अच्छा लगता है ? आप लोगों की दुर्दशा मुझसे देखी नहीं जाती।"

युधिष्ठिर ने कहा—"प्रिये ! तुम सत्य कहती हो, परन्तु मैं धर्म-बन्धन में फँसा हूँ। जब तक शरीर में प्राण हैं धर्म का त्याग नहीं कर सकता।"

द्रौपदी ने जब देखा कि उसकी बातों का असर युधिष्ठिर के ऊपर कुछ भी नहीं हुआ तो उसने विधाता को कोसना आरम्भ किया।

युधिष्ठिर ने जब देखा कि द्रौपदी विधाता को कोस रही है तो उसने कहा—"तुम तो अत्यन्त समझदार हो। बुरा

कर्म हम करें और दोष विधाता के सिर पर मढ़ें, यह कौन-सी नीति है ?"

द्रौपदी ने कुछ लजा कर कहा—"मैं विधाता की अवज्ञा नहीं करती परन्तु यह सोचती हूँ कि आप जरा आज्ञा दे दें तो आपके भाई एक बार में ही राज्य वापस ले लेंगे।"

भीम ने भी इस बात का अनुमोदन किया और प्रार्थना की कि अभी वे आज्ञा दें तो जाकर दुर्योधन को मार दें और राजसिंहासन पर युधिष्ठिर को पुनः स्थापित कर दें।

युधिष्ठिर ने भीम की बातें सुनी तो कहने लगे, "देखो भाई! हम लोग जुए में हार गये हैं और जुए में की गई प्रतिज्ञा के अनुसार अपने दिन पूरे कर लेंगे तब ही युद्ध करना होगा।"

बेचारे सब लोग अपना मन मसोसकर रह गये।

अर्जुन की तपस्या

एक दिन वेदव्यासजी युधिष्ठिर से मिलने आये। उन्होंने अर्जुन को बताने के लिए उन्हें प्रतिस्मृति नामक एक विद्या सिखलाई। इस विद्या के बल से कोई भी अनेक देवताओं को सन्तुष्ट कर बड़े-बड़े अमोघ अस्त्र प्राप्त कर सकता था। व्यासदेव के चले जाने पर युधिष्ठिर ने वह विद्या अर्जुन को सिखा दी। इस विद्या को सीख लेने के बाद उसकी साधना करने के लिए अर्जुन उत्तर दिशा की ओर चले गये।

इन्द्रकील पर्वत पर चार महीने तक अर्जुन ने कठोर साधना किया जिसके फल से महादेवजी उन पर प्रसन्न हुए।

महादेवजी ने किरात का रूप धारण किया और भगवती पार्वती को किरात रमणी के वेश में सजा कर अपने साथ ले आये।

शिवार्जुन-युद्ध

इसी समय एक दानव ने सुअर का रूप धारण कर अर्जुन पर आक्रमण किया। अर्जुन उस पर बाण छोड़ना ही चाहते थे कि किरातरूपी महादेवजी ने प्रगट होकर उनसे कहा—"इसे मैं मारूँगा।" तब तक अर्जुन ने बाण छोड़ दिया। शिवजी ने भी उसी क्षण बाण छोड़ा। दोनों बाण एक साथ सुअर को जा लगे। आखेट का नियम यह है कि एक शिकार पर एक ही आदमी बाण छोड़ सकता है। अब उस नियम को भंग करने के लिए किरात और अर्जुन में झगड़ा शुरू हो गया। अर्जुन ने किरात पर अपने बाणों से आक्रमण किया, तलवार से उस पर झपटे और अन्त में उसके साथ अर्जुन ने मल्लयुद्ध आरम्भ किया। किरात ने अर्जुन को गिरा कर बेहोश कर दिया और जब कुछ देर बाद उन्हें होश आया, तो वे शिवजी का ध्यान करने लगे। ध्यान के द्वारा उन्हें मालूम हो गया कि उनके सामने किरात वेशधारी स्वयं देवाधिदेव महादेव हैं। अर्जुन उनके पैरों पर गिर कर क्षमा माँगने लगे। महादेवजी ने प्रसन्न होकर उन्हें पाशुपत और ब्रह्मशिरा नाम के दो अमोघास्त्र दिये। अनन्तर अर्जुन ने और भी अनेक देवताओं से भिन्न-भिन्न भाँति के अमोघास्त्र

प्राप्त किये। इसी समय इन्द्र का सारथि मातलि रथ लेकर अर्जुन के पास आया और बोला—"आपको इन्द्रदेव ने स्वर्ग में बुलाया है।"

अर्जुन का स्वर्ग-गमन

अर्जुन रथ पर बैठकर स्वर्ग-मार्ग की ओर चले। रास्ते में उन्होंने अनेक विचित्र लोक देखे। इन्द्र ने अर्जुन का अच्छा स्वागत किया और राक्षसों का संहार करने में उनसे उन्होंने मदद माँगी। उन दिनों अनेक राक्षस देवताओं को तङ्ग कर रहे थे। अर्जुन ने सब राक्षसों को मार कर और भगा कर इन्द्रदेव को प्रसन्न किया और उनसे अनेक दिव्यास्त्र प्राप्त किये। पाँच वर्ष तक स्वर्ग में रह कर उन्होंने युद्ध-विद्या और संगीत-विद्या की शिक्षा प्राप्त की।

स्वर्ग में रहते समय इन्द्र की प्रधान अप्सरा उर्वशी उन पर मोहित हो गयी और उसने अपनी अभिलाषा अर्जुन से प्रकट की। परन्तु धर्मात्मा अर्जुन ने उन्हें केवल अपनी माता के समान ही समझा।

कमल की कथा

इधर अन्य पाण्डवगण बदरिकाश्रम में आकर अर्जुन का इन्तजार करने लगे।

एक दिन कमल का एक फूल द्रौपदी के सामने कहीं से आ गिरा। द्रौपदी ने वैसे ही फूल लाने के लिए भीम से

कहा । फूल ईशान कोण की तरफ से उड़ कर आया था, इसलिए भीम उसी तरफ फूल की तलाश में चल दिये । मार्ग में उन्होंने एक बन्दर को लेटे हुए देखा । भीम ने पहले तो उसे ललकारा और उसके बाद उसे वहाँ से हटाने के लिये बहुत कोशिश करने लगे, परन्तु वह बन्दर इतना भारी था कि जरा भी न हिला । अनन्तर जब उन्होंने नम्रतापूर्वक बन्दर से प्रार्थना की तब उन्हें मालूम हुआ कि वे स्वयं हनुमानजी हैं । कार्य-सिद्धि के लिये हनुमानजी से आशीर्वाद लेकर भीम कमल-वन में पहुँचे । वहाँ भी उन्हें राक्षसों से लड़ना पड़ा । इधर युधिष्ठिर भीम को आश्रम में न देखकर जब व्याकुल हुए तो द्रौपदी ने सारा हाल कह सुनाया । वे सब भीम को खोजने के लिये चले और मार्ग में ही भीम से उनकी भेंट हो गई । भीम ने बहुत से कमल के फूल द्रौपदी को दिये ।

जटासुर-वध

कुछ दिनों के बाद जटासुर नामक एक राक्षस ब्राह्मण के वेश में आकर आश्रम में रहने लगा । एक दिन घटोत्कचादि राक्षस आश्रम में नहीं थे और भीमसेन भी शिकार खेलने चले गये थे, तो उस ब्राह्मणवेशी राक्षस ने पांडवों के अस्त्र-शस्त्र चुरा लिये और युधिष्ठिर आदि को द्रौपदी के साथ लेकर भागने लगा । इसी समय भीम आ पहुँचे और उस राक्षस पर टूट पड़े । राक्षस मर गया ।

कुबेर-विजय

कुछ दिनों के बाद वे सब गन्धमादन पर्वत पर पहुँचे। पर्वत की चोटी पर भीम ने ऐसी गर्जना आरम्भ कर दी, कि आस-पास के राक्षस तथा यक्षों ने उन्हें घेर कर मारने का उपक्रम किया। भीम को लड़ने से कब इनकार था ? भीम जैसे पराक्रमी योद्धा के सम्मुख राक्षस और यक्ष भला कब तक ठहर सकते थे ? यक्षों में एक का नाम मणिमान था और वह कुबेर का मित्र था। भीम ने जब उसे मार डाला, तो कुबेर को बड़ा क्रोध आया और वे तत्काल अनेक यक्षों के साथ आकर भीम से लड़ने लगे, परन्तु भीम का विशाल पराक्रम देखकर वे अत्यन्त प्रसन्न हुए और उनसे उन्होंने मित्रता कर ली।

इसी गन्धमादन पर्वत पर एक दिन जब सब लोग बैठे थे तो अर्जुन का विमान वहाँ आ पहुँचा। बहुत दिनों के बाद प्राणप्रिय भ्राता अर्जुन को देखकर चारों भाइयों की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा तथा द्रौपदी भी आनन्दाश्रु बहाने लगी।

भीम पर विपत्ति

एक दिन भीम जब एक जङ्गल के अन्दर फल-फूल लाने के लिए घुसे तो एक भयङ्कर अजगर ने इस तरह उन्हें पकड़ लिया कि लाख कोशिश करने पर भी वे उससे छूट न सके।

पाण्डव के ही वंश में अनेक वर्ष पहले नहुष नाम के एक राजा हुए थे। उन्होंने किसी समय महामुनि अगस्त्य

का कोई अपराध किया था, जिससे क्रुद्ध होकर मुनि ने उन्हें साँप बना दिया।

अस्तु, उस अजगर ने जब भीम को निगल जाना चाहा, तो भाग्यवश युधिष्ठिर वहाँ पहुँच गये। उन्होंने अजगर से बहुत मिन्नतें कीं तो वह उनसे बोला कि यदि वे उसके कुछ प्रश्नों का समुचित उत्तर द्वारा समाधान कर सकें, तो वह भीम को छोड़ देगा। अतः अजगर ने युधिष्ठिर से धर्म सम्बन्धी अनेक प्रश्न पूछे और उसका यथोचित उत्तर पाकर उसने भीम को छोड़ दिया। इसके बाद पुनः वे सब काम्यक वन में पहुँचे और वहाँ उनसे भगवान् श्रीकृष्ण की, अन्यान्य ऋषि-मुनियों की भी भेंट हुई।

दुर्योधन-बन्धन-मुक्त

पाण्डवों के वनगमन के पश्चात् महर्षि मैत्रेय और वेद-व्यासजी हस्तिनापुर जाकर दुर्योधनादि को बहुत समझाने लगे, परन्तु उस धूर्त मण्डली को उनकी बात कब सहन हो सकती थी ? वे तो यह विचार कर रहे थे कि चलकर जंगल में पाण्डवों की दुर्दशा देखें और उनकी हँसी उड़ायें। इसी उद्देश्य से अपने इष्ट-मित्र और सेना सहित शिकार के बहाने दुर्योधनादि भ्रातागण द्वैतवन की ओर चले। उस वन में मानसरोवर नामक एक बड़ा ही सुन्दर तालाब था। जिसमें गन्धर्व लोग जल-विहार करते थे। दुर्योधन की सेना

ने जब उस तालाब के किनारे डेरा डालना चाहा, तो गन्धर्वों से उनकी लड़ाई होने लगी। परिणाम यह हुआ कि सब कौरव भाग गये और दुर्योधन अकेला शत्रुओं के हाथ बन्दी हो गया।

दुर्योधन की दुर्दशा का हाल सुनकर युधिष्ठिर अत्यन्त दुःखी हुए और शत्रु होने पर भी दुर्योधन का दूसरे किसी व्यक्ति द्वारा सताया जाना उन्होंने अपना अपमान समझा, क्योंकि कुछ भी हो, फिर भी दुर्योधन उनका ही भाई था। गन्धर्वों के राजा चित्रसेन से अर्जुन की अच्छी मित्रता थी। उन्होंने चित्रसेन से अनुरोध कर दुर्योधन को छुड़ा लिया। दुर्योधन ने लज्जा से सर नीचा कर हस्तिनापुर की ओर प्रस्थान किया।

द्रौपदी-हरण

एक बार पाँचों पाण्डव—द्रौपदी और पुरोहित धौम्य को आश्रम में छोड़कर किसी दूसरे वन में शिकार खेलने चले गये थे कि उस समय सिन्धु देश का राजा जयद्रथ उधर से निकला। उसने द्रौपदी को सामने देख लिया। पहले तो जयद्रथ ने अपने साथ चलने की अनेक मिन्नतें कीं, परन्तु जब वे न मानीं, तब जबरदस्ती उन्हें रथ पर बिठा कर वह भाग चला।

वह थोड़ी ही दूर जा सका था कि पाण्डवों को द्रौपदी-हरण का पता लग गया और वे अग्रसर होकर जयद्रथ के साथ भिड़ पड़े। पाण्डवों के अस्त्र-शस्त्र चलाने से जयद्रथ की

सेना तितर-बितर हो गई और जयद्रथ भी इतना डर गया कि द्रौपदी को रथ से उतार कर वह भाग चला। भीम ने उसे पकड़ लिया और अर्द्धचन्द्र बाण से उसकी एक ओर की मूँछ और एक ओर के सिर के बाल मूँड़ दिये।

जयद्रथ लज्जित और अपमानित होकर लौट आया और हरिद्वार जाकर उसने शिवजी को प्रसन्न करने के लिए घोर तपस्या की। तपस्या से प्रसन्न होकर शिवजी प्रकट हुए और उसे वर देने के लिए तैयार हुए।

जयद्रथ ने कहा—"प्रभु, मुझे यह वर दीजिये कि मैं सब पाण्डवों को हरा दूँ।" शिवजी ने कहा—"वत्स! अर्जुन को छोड़कर तुम अन्य पाण्डवों को एक दिन युद्ध में हरा सकोगे।"

उक्त घटना के कुछ दिन बाद वनवास की १२ वर्ष की अवधि पूरी हो गई। अब पाण्डवों को एक साल के लिये अज्ञातवास की चिन्ता हुई।

पाण्डवों ने मत्स्य देश के विराट नगर में उस अन्तिम वर्ष को बिताने का निश्चय किया, कारण वहाँ के राजा विराट बड़े विद्वान, गुणी और धार्मिक तथा पाण्डव कुल के हेतु थे।

विराट-पर्व

अज्ञात-वास

अनन्तर पाण्डवगण द्रौपदी सहित चलते-चलते विराट नगर के पास जा पहुँचे। अपने अस्त्र-शस्त्रों को महावीर अर्जुन ने एक श्मशान के पास सेमल के वृक्ष की ऊँची शाखा पर बाँध दिया। उसके बाद सबसे पहले युधिष्ठिर राजा विराट की सभा में गये। उन्होंने राजा से अपना नाम कंक बताया और चौपड़ खेलने में अपनी दक्षता की बात उनसे जाहिर की। राजा को चौपड़ खेलने का बड़ा शौक था। उन्होंने ब्राह्मण कंकवेशी युधिष्ठिर को अपने यहाँ रख लिया।

इसके बाद भीम राजा के पास पहुँचे और अपने को रसोइया बतलाकर वल्लभ के नाम से राजा के यहाँ भर्ती हो गये। द्रौपदी विराट की रानी सुदेषणा की सखी नियुक्त हो गई।

इसी प्रकार एक-एक करके अर्जुन, नकुल और सहदेव भी राजा विराट के यहाँ पहुँचे और नौकर हो गये। बृहन्नला के नाम से अर्जुन राजपुत्री उत्तरा के संगीत-शिक्षक बने। नकुल ने गौवों की रक्षा का भार लिया और सहदेव अश्व-

पाल नियुक्त हुए। राजा विराट भी उन लोगों का यथेष्ट आदर और सत्कार करते थे।

कुछ दिनों के बाद जीमूत नामक पहलवान राज्य में आया। उसने राज्य के सब पहलवानों को हराकर राजा से कहा—"आपके राज्य में कोई वीर नहीं है, जो मुझसे लड़ सके।" इस पर भीम अग्रसर हुए, और उन्होंने जोर से जीमूत को जमीन पर दे पटका जिससे उसकी हड्डी-पसली सब चूर-चूर हो गई और वह तत्काल मर गया।

कीचक-वध

इधर द्रौपदी का समय बड़े कष्ट से बीतता था। रानी तो उन्हें बड़ी कृपा की दृष्टि से देखती थी परन्तु रानी का भाई कीचक द्रौपदी को सदा सताया करता था। एक दिन कीचक ने द्रौपदी के साथ ऐसा अनुचित व्यवहार करना चाहा कि द्रौपदी भागकर राजसभा में पहुँची। कीचक उसके पीछे-पीछे दौड़ा हुआ आया और उसने सभा में द्रौपदी के बाल पकड़कर उसे एक लात मारी और भाग गया।

भीम और युधिष्ठिर सभा में उपस्थित थे। युधिष्ठिर यदि संकेत के द्वारा भीम को रोक न लेते तो न जाने क्या अनर्थ हो जाता? असल बात यह थी कि खुल्लम-खुल्ला लड़ाई-झगड़ा होने पर इस बात के प्रकट होने का भय था कि वे छद्म-वेशधारी पाण्डव हैं।

भीम ने अकेले में द्रौपदी से मिलकर कहा, वह रात को पाठशाला में कीचक को बुला भेजे।

हुआ भी वही। द्रौपदी ने कीचक के पास समाचार भेज दिया कि वह रात को पाठशाला में आकर उससे मिले। कीचक को मानो हाथ में स्वर्ग मिल गया। वह यथासमय पाठशाला में पहुँचा। भीम वहाँ पहले से ही हाजिर थे। कीचक जब आगे बढ़ा तो भीम ने उसे पकड़ लिया और कुछ ही देर के अन्दर उसका काम तमाम कर डाला।

सुबह सब लोगों ने आश्चर्य के साथ सुना कि सैरन्ध्री के गन्धर्व-पतियों ने रात के समय कीचक को मार डाला। द्रौपदी ने अपना नाम विराट राजा के यहाँ सैरन्ध्री बतलाया था। कीचक के सम्बन्धी द्रौपदी पर इतने बिगड़े कि उन्होंने उसे भी पकड़ लिया और कीचक के शव के साथ उसे भी दाह करने के लिए ले चले। द्रौपदी रोने लगी। द्रौपदी के रोने की आवाज जब भीम के कानों में पहुँची तो वे झट से वेश बदलकर श्मशान में जा पहुँचे।

उन्होंने एक वृक्ष उखाड़कर कीचक के सम्बन्धियों को मार गिराया।

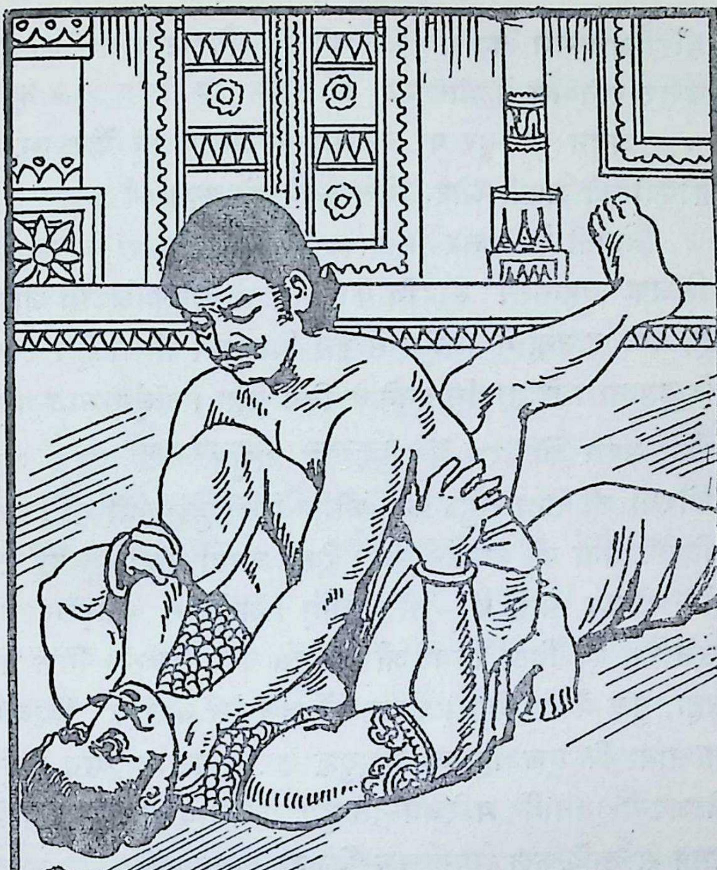
त्रिगर्त-पराजय

कीचक यद्यपि भीम के हाथों मारा गया, यह सच है, परन्तु वह एक बड़ा वीर था, इसमें कोई सन्देह नहीं।

सब राजा लोग कीचक से डरते थे और उसके इस पराक्रम के कारण विराटराज भी बहुत कुछ निश्चिन्त थे। कीचक की मृत्यु का समाचार पाकर त्रिगर्त देश का राजा, दुर्योधन का मित्र सुशर्मा अत्यन्त प्रसन्न हुआ। विराट-राज्य से उसका विरोध बहुत पुराना था, परन्तु कीचक के भय से वह कुछ न कर सका था। कीचक की मृत्यु के बाद कौरवों की मदद से वह सेना लेकर राजा विराट पर आक्रमण करने के लिए तैयार हुआ। उसकी सेना ने राजा की गायों को छीन लिया। इससे सुशर्मा और विराट की सेना में घोर संग्राम शुरू हो गया। विराटराज की सेना हारकर भाग गई और वे स्वयं सुशर्मा के हाथ बन्दी हो गये। तब पाण्डवों से न रहा गया। भीम ने एक पेड़ उखाड़ कर सुशर्मा के सैनिकों पर आक्रमण किया। सेना के पैर उखड़ गये और वह हाहाकार मचाती हुई भागने लगी। भीम ने बाल पकड़ कर सुशर्मा को जमीन पर दे मारा। अब उलटी गंगा बहने लगी। विराट राजा मुक्त गये और सुशर्मा बन्दी हुआ। सुशर्मा ने जब राजा विराट से क्षमा माँगी, तो उन्होंने उसे छोड़ दिया।

अर्जुन का पराक्रम

इधर तो युद्धस्थल में यह बातें हो रही थीं, तो उधर उस समय कौरवों ने दूसरी ओर से विराट नगर में प्रवेश कर सब गौओं को अपने अधिकार में कर लिया। कौरवों



कीचक-वध (प० ४७)

द्वारा आक्रमण का समाचार पाकर, विराट राजा का पु
उत्तर रनिवास में भाग गया।

अर्जुन कुछ दूर पर बैठे सरगम अलाप रहे थे। उन्हों
द्रौपदी को अपनी ओर संकेत करने को कहा।

द्रौपदी ने उत्तर से जाकर कहा कि उत्तरा के सङ्गी
शिक्षक बृहन्नला सारथि का काम भी बहुत अच्छा जान
हैं, क्योंकि उन्होंने अर्जुन से इस विद्या को सीखा है। उत्त
ने बृहन्नला से सारथि बनने के लिये कहा। अर्जुन मान गये

उत्तर को रथ में बिठाकर अर्जुन वहाँ पहुँचे जह
कौरवों की सेना समुद्र की भाँति फैली हुई खड़ी थी। उ
विराट सेना को देखकर उत्तर ऐसा घबड़ा गया कि वह र
से कूदकर पीछे की ओर भागा। अर्जुन ने पकड़कर पुन
उसे रथ पर बिठा लिया और उससे कहा कि तुम सिर्फ बै
रहो, युद्ध मैं करूँगा। उत्तर को जब इस बात का विश्वा
न आया कि एक हिंजड़ा भी युद्ध कर सकता है, तब अर्जु
ने अपना यथार्थ परिचय देते हुए बतलाया कि उर्वशी के
शाप से उन्हें कुछ समय तक हिंजड़ा बनना था।

तब अर्जुन अपने अस्त्र-शस्त्रों को उस वृक्ष पर से उता
लाये, जहाँ विराट राजा के घर आते समय वे उन्हें छिपा
आये थे। अर्जुन के गांडीव की टङ्कार सुनकर कौरवों के
कान खड़े हो गये। हिसाब लगाकर देखने पर मालूम हुआ
कि अज्ञातवास के दिन पूरे हो गये।

भीष्म ने कौरव सेना को चार भागों में बाँट दिया। एक भाग गौओं की रक्षा में नियुक्त रहा और बाकी तीन भाग अर्जुन से युद्ध करने लगे।

युद्ध के प्रारम्भ में अर्जुन ने दो बाण गुरु द्रोण के चरणों में मारे। इससे द्रोण समझ गये कि अर्जुन ने उन्हें इस रीति से प्रणाम किया है।

उत्तर रथ को उस तरफ ले गया, जहाँ दुर्योधन और विराट राजा की गौएँ थीं। अर्जुन के धनुष का शब्द सुनते ही कौरव सेना के पैर उखड़ने लगे। एक-एक कर अर्जुन ने कर्ण, कृपादि सब वीरों को हरा दिया। अन्त में गुरु द्रोण सामने आये। अर्जुन ने उन्हें प्रणाम करते हुए कहा—"महात्मन्! मैं आपका शिष्य और सेवक हूँ। इसलिए जब तक आप मुझ पर प्रहार न करें, तब तक प्रतिकार के लिए मैं शस्त्र धारण नहीं कर सकता।"

द्रोण ने अर्जुन के ऊपर बाण छोड़े। अर्जुन ने सब बाणों को काट गिराया और उनके रथ को बाणों से इस तरह घेर दिया कि वे अदृश्य हो गये। गुरु को अदृश्य देखकर कौरव-सेना घबड़ा उठी।

इस प्रकार सब कौरव वीरों के साथ अर्जुन का कई बार युद्ध हुआ, परन्तु अर्जुन का कोई भी बाल बाँका न कर सका। राजा विराट की गौओं को छुड़ाकर अर्जुन राजधानी की ओर चल दिये।

चलते समय अर्जुन ने एक बाण से दुर्योधन के मुकुट के दो टुकड़े कर डाले।

कौरवगण अपना-सा मुँह लेकर हस्तिनापुर लौट गये।

पाण्डव-परिचय

जब पाण्डवों की कृपा से विराट सुशर्मा आदि को जीत कर आये तो उन्हें समाचार मिला कि उनके पीछे कौरवों ने बड़ा भारी उपद्रव किया। उत्तर कौरवों को युद्ध में परास्त कर अब विजयश्री को लेकर बृहन्नला के साथ आ रहा है। यह सुनकर राजा विराट अत्यधिक प्रसन्न हुए।

तदनन्तर राजा विराट कंक के साथ चौपड़ खेलने बैठ गये। खेलते समय अपने बेटे की ही बहादुरी मात्र कहते जाते थे। महाराज युधिष्ठिर जब सुनते-सुनते थक गये तब बोले—"महाराज ! यह सब उस बृहन्नला सारथि की करामात है। वह जिसका सारथि होता है उसको कोई नहीं हरा सकता।"

राजा विराट अपने पुत्र की निन्दा न सह सके। उन्होंने छद्म-वेशधारी कंक को ऐसा कहने से मना किया परन्तु महाराज युधिष्ठिर न माने। इस पर राजा अत्यन्त क्रुद्ध हो गया और चौपड़ युधिष्ठिर के मुँह पर फेंक दी। युधिष्ठिर के नाक से रक्त बहने लगा। इसी समय सेवक ने राजा को खबर दी कि राजकुमार आये हैं। महाराज ने सम्मानपूर्वक अन्दर ले आने की आज्ञा दी। युधिष्ठिर ने यह सोचकर कि

अर्जुन आ गया है, मेरी नाक से गिरते हुए रक्त को देखेगा तो सब भेद खुल जायगा, तब युधिष्ठिर ने द्वारपाल को संकेत किया कि केवल राजकुमार को ही अन्दर आने दे। राजकुमार उत्तर अन्दर आये और उन्होंने आते ही युधिष्ठिर की नाक से रक्त बहने का कारण पूछा। राजा ने बड़े गर्व से उत्तर दिया कि यह तुम्हारी निन्दा कर रहा था। इसपर राजकुमार उत्तर ने राजा से कहा कि आपने बड़ी भारी गलती की। राजा ने पुत्र के कथनानुसार युधिष्ठिर से क्षमा-याचना की।

राजा ने बड़े गर्व और प्रेम से पूछा—"पुत्र ! तुमने द्रोण, भीष्मादियुक्त कौरव सेना को कैसे हराया ?"

उत्तर ने जवाब दिया—"मेरी क्या सामर्थ्य थी ? एक दिव्य देहधारी पुरुष ने मेरी सहायता की। वह परसों फिर प्रकट होगा।"

वार्ता समाप्त हो जाने पर राजा की आज्ञा से अर्जुन अन्तःपुर में गया। लूटे हुए वस्त्रादि सब उसने उत्तरा को दे दिये।

तीसरे दिन सबने मिलकर अपने प्रकट होने की बात पर विचार-विमर्श किया और सब लोग अपनी पूर्व वेश-भूषा में हो गये। अर्जुन ने महाराजा युधिष्ठिर को राजसिंहासन पर बिठा दिया। विराट यह देखकर बड़ा क्रोधित हुआ।

अर्जुन ने हँसकर कहा—"महाराज, आपका आसन तो क्या है, यह तो इन्द्र के आसन पर भी बैठ सकते हैं, क्योंकि यह तो स्वयं महाराज युधिष्ठिर हैं।"

राजा आश्चर्य में पड़ गया। पाण्डवों का परिचय पाकर वह क्षमा माँगने लगा।

उत्तरा-परिणय

महाराज अपनी गलती पर बहुत पछताने लगे। उन्होंने क्षमा-याचना कर महाराज युधिष्ठिर से प्रार्थना की कि वे उत्तरा का पाणिग्रहण अर्जुन के साथ स्वीकार कर लें जिससे कि दोनों कुलों का संबंध दृढ़ हो जाय। अर्जुन ने इसे अस्वीकार कर दिया और कहा कि मैं तो उत्तरा का शिक्षक हूँ। शिक्षक पिता के तुल्य होता है। यदि आपको पाण्डव कुल से अपना नाता जोड़ना ही है तो अभिमन्यु के साथ विवाह कर दीजिये। विराट ने यह बात स्वीकार कर ली।

विवाह की तैयारियाँ बड़ी धूमधाम से होने लगीं। पाण्डवों को तैयार करने के लिए विराट ने अपना उपलव्य नामक नगर दे दिया।

पाण्डवों ने यह समाचार दूतों द्वारा चारों ओर भेज दिया। श्रीकृष्ण और सुभद्रा इस बात को सुनकर अत्यन्त हर्षित हुए।

निश्चित समय पर श्रीकृष्ण, बलराम, सात्यकि आदि

अपने कुटुम्बियों को साथ लेकर उपलव्य नगर में आ पहुँचे। द्रुपद, काशिराज, वत्सनरेश तथा युधिष्ठिर के अन्य मित्र राजा भी आ गये।

उत्तरा से अभिमन्यु का विवाह बड़ी धूमधाम से हुआ। विराट ने बहुतेरे गाँव और विपुल धनराशि पाण्डवों को दहेज में दी।

विचार सभा

अभिमन्यु के विवाह के बाद श्रीकृष्णजी ने सब लोगों को बतलाया कि राज्य-वैभव और ऐश्वर्य में पले हुए पाण्डवों ने वनवास और अज्ञात-वास में कितने कष्ट सहे हैं, साथ-ही-साथ सब सभासदों को इस बात से भी परिचित कराया कि यह केवल युधिष्ठिर की ही धर्म-प्रियता थी कि इतने कष्टों को सहा, अन्यथा भीम और अर्जुन जैसे वीर इन कष्टों को सहन करना स्वीकार नहीं करते।

इसके बाद बलराम ने कहा—"देखिए, जो कुछ श्रीकृष्ण ने कहा है वह सर्वथा सत्य है। पाण्डव लोभी नहीं हैं, वे आधे राज्य से भी प्रसन्न हो जायेंगे। दूसरी बात यह भी है कि इसमें दुर्योधन का उतना अपराध नहीं है जितना कि युधिष्ठिर का है। जब वे जानते थे कि उनको खेलना नहीं आता तो वे जुआ खेलने क्यों गये ?"

बलराम की इन बातों को सुनकर सात्यकि बिगड़ कर बोले—"हम लोग आपके स्वभाव से पूर्ण परिचित हैं। आप युधिष्ठिर जैसे धर्मात्मा को भी दोषी ठहराते हैं। यदि युधिष्ठिर अपने घर सबको बुलाते और तब जुए में हारते तो कोई बात भी थी। अपने सीधे स्वभाव तथा छल-प्रपञ्च

न जानने के कारण उन दुष्ट लोगों ने जो कह दिया उसी को सत्य मानकर जीते हुए दाँव को भी सब लोगों के कहने पर हारा हुआ मान लेते थे। न्याय तो यही है कि हम लोग युधिष्ठिर को आधा राज्य दिला दें। यदि दुर्योधन सीधी तरह न माने तो बलपूर्वक मनवाना पड़ेगा।"

द्रुपद ने सात्यकि के वचनों का अनुमोदन किया और कहा–"आधे राज्य पर पाण्डवों का अधिकार है, इस बात में संशय नहीं है। दुर्योधन से राज्य माँगने से क्या लाभ ? वहाँ न्याय पक्ष का समर्थन करनेवाला भी कौन है ? भीष्म, द्रोण आदि सब उसका नमक खाते हैं—कैसे विरोध करने का साहस करेंगे ? इसलिए पहले हमलोगों का कर्त्तव्य है कि अन्य राजाओं के पास दूत भेजकर मालूम कर लें कि वे समय पड़ने पर सहायता देंगे या नहीं। दुर्योधन भी शक्ति-संचय के लिये सब राजाओं के पास दूतों को भेजेगा परन्तु जिनका दूत पहले पहुँचेगा, वही बाजी मार ले जायगा।"

रण-निमंत्रण

श्रीकृष्णजी के कथन पर राजा द्रुपद की सम्मति के अनुसार युद्ध की तैयारियाँ होने लगीं। द्रुपद ने अपने चतुर पुरोहित को दूत बनाकर दुर्योधन के पास भेजा और भी दूत अन्य मित्र-राज्यों में भेजे गये। दोनों दलों के दूत अपने-अपने नातेदारों की सहायता प्राप्त करने की चेष्टा करने

लगे। श्रीकृष्ण के पास दूत न भेजकर अर्जुन स्वयं चले। यह समाचार जब दुर्योधन को मिला तो वह भी द्वारिका को रवाना हुआ। संयोगवश दोनों एक साथ द्वारिका में पहुँचे और दोनों ने एक साथ महल में प्रवेश किया।

भगवान श्रीकृष्ण इस समय सोये हुए थे। दुर्योधन उनके पलंग के सिरहाने के पास एक सिंहासन पर बैठ गया। अर्जुन उनके पैरों के पास बैठकर उनके जागने की प्रतीक्षा करने लगे। श्रीकृष्ण की दृष्टि आँख खुलने पर अर्जुन पर पड़ी जो पैरों के पास बैठे थे। फिर उन्होंने दुर्योधन को भी देखा। दुर्योधन ने युद्ध में उनकी सहायता माँगते हुए कहा—"मैं पहले आया हूँ, इसलिए न्यायतः आपको मेरी सहायता करनी पड़ेगी।"

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा कि उन्होंने पहले अर्जुन को ही देखा है। फिर भी वे दोनों की सहायता करने को प्रस्तुत हुए। उन्होंने कहा, "एक ओर मेरी एक अयुत नारायणी सेना रहेगी और दूसरी ओर मैं स्वयं अकेला रहूँगा। आप लोग इन दोनों में से एक चुन सकते हैं।"

अर्जुन ने कहा—"महाराज! मुझे सेना की आवश्यकता नहीं है। मैं तो केवल आपको चाहता हूँ।"

श्रीकृष्ण भगवान ने दुर्योधन को अपनी सेना और अर्जुन को उसके रथ का सारथि बनने का वचन दिया।

मद्र देश के राजा पाण्डवों के मामा शाल्व ने, दूत के मुँह से समाचार सुनकर बड़ी भारी सेना एकत्र की और पाण्डवों की सहायता के लिए चल पड़े। दुर्योधन ने मार्ग में चतुराई के साथ ऐसी व्यवस्थाएँ कर रखी थीं कि कहीं भी राजा शाल्व को पथ का कष्ट न उठाना पड़े। महाराज शाल्व ने समझा था कि वे सब व्यवस्थायें युधिष्ठिर द्वारा की गई हैं। अतः वे बड़े प्रसन्न हुए। किन्तु जब दुर्योधन ने शाल्व के पास पहुँचकर उनका आदर और सत्कार किया तब उन्हें पता चला कि उन सब सुविधाओं का प्रबन्ध दुर्योधन ने किया है। शाल्व ने प्रसन्न होकर कहा—"वत्स ! मैं तुम्हारे आदर और सत्कार से अत्यन्त प्रसन्न हूँ। बोलो, क्या चाहते हो ?" दुर्योधन ने प्रार्थना की कि युद्ध के समय वे उसकी सेना का सेनापतित्व करें।

शाल्व को दुर्योधन की प्रार्थना स्वीकार करनी पड़ी। इसके बाद वे युधिष्ठिर के पास पहुँचे और उनसे सब बातें कहीं। युधिष्ठिर ने उनसे कहा—"यदि आप प्रतिज्ञा कर चुके हैं, तो ठीक है। परन्तु एक बात का ध्यान रखें कि यदि किसी समय कर्ण सेनापति बनाये जायँ, तो आप सारथि बनकर उसका उत्साह भङ्ग कर दें जिससे अर्जुन उन्हें पराजित कर सकें।"

शाल्व युधिष्ठिर की बात मानकर सेना सहित दुर्योधन के पास चले गये।

पाण्डवों के पक्ष में बड़ी-बड़ी सेनायें लिये हुए सात्यकि, चेदिराज, शिशुपाल के पुत्र धृष्टकेतु, जरासंध पुत्र सहदेव, महावीर पाण्डय, राजा द्रुपद, राजा विराट आदि अनेक राजा-महाराजा आ गये, इनके सैनिकों की संख्या सात अक्षौहिणी थी।

दुर्योधन की ओर भी ग्यारह अक्षौहिणी सेनायें तैयार हो गईं। भगदत्त भूरिश्रवा, भोज ाज, शाल्व, कृतवर्मा, जयद्रथ आदि वीर अपनी ग्यारह अक्षौहिणी सेना लेकर आ गए।

सन्धि-प्रस्ताव

द्रुपद के भेजे हुए पुरोहित-दूत धृतराष्ट्र के पास पहुँचे। उन्होंने पाण्डवों का पक्ष पुष्ट करते हुए सन्धि का प्रस्ताव उपस्थित किया।

भीष्म पितामह ने उस प्रस्ताव का अनुमोदन किया और कहा कि पाण्डवों को उनका राज्य वापस मिल जाना चाहिये। परन्तु दुर्योधन को यह बात कब स्वीकार थी ?

धृतराष्ट्र ने भीष्म को उत्तेजित होते देखकर कहा—"पितामह की आज्ञानुसार चलने में ही हमारी भलाई है।"

संजय-सन्देश

धृतराष्ट्र की आज्ञानुसार सञ्जय पाण्डवों के पास पहुँचे। युधिष्ठिर के सम्मुख उपस्थित होकर सञ्जय ने सन्धि का प्रस्ताव रखा।

युधिष्ठिर चाहते थे कि यदि उनका हक शान्ति से मिल जाय तो युद्ध न हो।

सञ्जय ने पाण्डवों की स्वीकृति की खबर कौरवराज की सभा में सुनाई। भीष्म, द्रोण, विदुर, कृपाचार्य और धृतराष्ट्र ने भी दुर्योधन को बहुत समझाया परन्तु दुर्योधन ने किसी की बात नहीं मानी।

श्रीकृष्ण का दौत्य-कर्म

श्रीकृष्ण चाहते थे कि किसी प्रकार युद्ध टल जाय। अतः वे दूत बनकर स्वयं हस्तिनापुर गये। वहाँ वे विदुरजी के घर पर ठहरे और विश्राम करने के उपरांत धृतराष्ट्र, विदुर, कुन्ती और दुर्योधन से मिले और सन्धि का प्रस्ताव रखा। महात्मा भीष्म और विदुर आदि सज्जनों ने पुनः दुर्योधन को बहुत समझाया। पर वह क्रोधित हो गया और बोला—"आप लोग व्यर्थ ही सुलह की रट लगाये हुए हैं। युद्ध के बिना हम सुई की नोंक के बराबर भी जमीन देने को तैयार नहीं हैं।"

भीष्म, द्रोणादि सहानुभूति तो पाण्डवों के साथ ही रखते थे, पर कौरवों का अन्न खाने के कारण उन्हें उनका ही साथ देना पड़ता था।

कुन्ती ने कर्ण से पाण्डवों की सहायता करने के लिए अनुरोध किया। कर्ण ने कुन्ती को वचन दिया कि मैं युधिष्ठिर, भीम, नकुल और सहदेव को लड़ाई में नहीं

मारूँगा। परन्तु अर्जुन से मैं अवश्य लड़ूँगा; चाहे मैं हारूँ या जीतूँ।

श्रीकृष्णजी लौट आये, और सब समाचार उन्होंने पाण्डवों से कह सुनाया, तब बड़े उत्साह के साथ लड़ाई की तैयारियाँ होने लगीं।

श्रीकृष्ण की आज्ञानुसार पाण्डवों ने द्रुपद के पुत्र धृष्ट-द्युम्न को अपना सेनापति बनाया और अपनी सात अक्षौ-हिणी सेना के साथ कुरुक्षेत्र के मैदान में हिरण्यवती नदी के तट पर डेरा डाला।

इधर कौरवों ने अपना सेनापति पितामह भीष्म को चुना। आन्तरिक इच्छा न रहने पर भी विवश होकर महात्मा भीष्म को अत्याचारी दुर्योधन का सेनापतित्व स्वीकार करना पड़ा।

अर्जुन-मोह

युद्ध-स्थल में आकर अर्जुन ने भगवान श्रीकृष्ण से कहा— "भगवान! अब आप मेरे रथ को ऐसे स्थान पर ले चलिये जहाँ से मैं दोनों ओर के वीरों को अच्छी तरह देख सकूँ।"

श्रीकृष्ण ने अर्जुन की अभिलाषानुसार दोनों सेनाओं के बीच में रथ ले जाकर खड़ा कर दिया।

दोनों सेनाओं के मध्य जाकर अपने सगे-सम्बन्धियों को देखकर अपने अस्त्र-शस्त्रों को रथ पर फेंक कर अर्जुन नीचे आये और श्रीकृष्ण से कहने लगे, "भगवान! जिन कुटुम्बियों और आत्मीय जनों की शुभकामना ही मनुष्यमात्र का ध्येय है, उन्हीं भाई-बन्धुओं को मारकर यदि हम राज्य पा भी जायँ तो क्या? हमको धिक्कार है! अपने भाइयों को मारकर राज्य भोगने से कहीं अच्छा है कि हम भीख माँगकर अपने पेट का पालन करें। धन और ऐश्वर्य की लिप्सा के कारण कुलनाश मुझसे न हो सकेगा।"

ठीक युद्ध के समय अर्जुन को ऐसे उदासीन भाव में देखकर भगवान ने अपनी परमपावनी कर्म-प्रधान वाणी द्वारा अर्जुन को कर्त्तव्योपदेश दिया, जिससे अर्जुन का मोह दूर हो गया और वह फिर से लड़ने के लिये प्रस्तुत हो गये।



अर्जुन-मोह

भगवान का वही उपदेश गीता के नाम से विख्यात है। इससे अज्ञानियों को ज्ञान, मोक्षार्थियों को मोक्ष, योगियों को योग और कर्मशील पुरुषों को कर्मयोग का मार्ग मिल जाता है।

अर्जुन भगवान के पैरों पर गिर पड़े और भगवान से कहने लगे—"भगवान, मेरा भ्रम दूर हो गया। मेरे ज्ञान-चक्षु खुल गये। क्षत्रियोचित कर्म का पालन करने के लिए मैं अवश्य युद्ध करूँगा। ऐसा कहकर वे फिर रथ पर सवार हो गये।

युद्ध का आरम्भ

रण-भेरी बजने के कुछ ही पहले युधिष्ठिर कौरव दल में गये। उन्होंने वहाँ जाकर क्रम से पितामह भीष्म, गुरुवर द्रोण, आचार्य कृप और मामा शाल्व की चरण वन्दना की। सभी लोगों ने युधिष्ठिर को विजयी होने का आशीर्वाद दिया। दुर्योधन के भाई युयुत्सु युधिष्ठिर की इस उदारता से इतने प्रभावित हुए कि वे कौरव-दल को छोड़-कर पांडव दल में आ मिले।

युद्ध छिड़ गया। भीष्म कौरवों के और भीम पांडवों के सेनापति बने। दोनों सेनाओं में भीषण युद्ध हुआ। वीर बालक अभिमन्यु की निरन्तर बाण-वर्षा से महाबली भीष्म व्याकुल हो गये।

युद्ध ने भीषण रूप धारण कर लिया। शाल्व के हाथ से राजा द्रुपद का पुत्र स्वर्ग सिधारा। भीष्म ने बाणों की

ऐसी झड़ी लगा दी कि पांडव सेना के पैर उखड़ने लगे। ऐसा प्रतीत होने लगा कि अब पांडवों की हार हो जायगी। इसी प्रकार घमासान युद्ध चलता रहा। सन्ध्या हो जाने पर युद्ध रुका और दोनों दलों के वीर युद्ध से विरत होकर विश्राम के लिए अपने-अपने डेरों में आ गए।

दूसरे दिन पांडवों की सेना के सेनानायक धृष्टद्युम्न हुये। उन्होंने पांडव सेना को क्रौञ्चायन व्यूह में सजाया। भीष्मदेव ने भी कौरव सेना में व्यूह रचना की।

इधर धृष्टद्युम्न ने बड़े जोरों से द्रोण पर आक्रमण किया। अस्त्र-शस्त्रों से क्षत-विक्षत वीरों की देह से रक्त की नदियाँ बह चलीं। अकेले भीमसेन ने कलिङ्ग के राजा शक्रदेव, भानुकाम, श्रतायु, सव्य, सत्यदेव और केतुभानु नामक वीरों को पलक मारते-मारते गिरा दिया। अभिमन्यु का युद्ध दुर्योधन के पुत्र लक्ष्मण के साथ हो रहा था। अभिमन्यु के हाथों लक्ष्मण मारा गया। लक्ष्मण की मृत्यु से दुर्योधन बड़ा दु:खी हुआ।

इधर अर्जुन साक्षात् रुद्र स्वरूप धारण कर युद्ध कर रहे थे। उनके बाणों के प्रहार से समस्त कौरव सेना छिन्न-भिन्न हो गई थी। सेना की ऐसी अवस्था देखकर भीष्म ने द्रोण से कहा—"आचार्य, आज तो अर्जुन के कारण हमारी सेना के पैर उखड़ते जा रहे हैं। अब सन्ध्या भी हो चली है। अतः मेरी राय में अब युद्ध बन्द कर देना चाहिये।"

युद्ध बन्द करने के लिये भेरी बजा दी गई। युद्ध बन्द हो गया। सब विश्राम के लिये अपने-अपने शिविरों को जाने लगे।

श्रीकृष्ण का क्रोध

तीसरे दिन युद्ध बड़े जोरों से आरम्भ हुआ। भीष्म ने गरुड़ और अर्जुन ने अर्द्धचन्द्र व्यूह में अपनी सेनाओं को रखा। थोड़ी ही देर में अर्जुन के बाणों से कौरव दल में भगदड़ मच गई। भीष्म को क्रोध चढ़ गया और उन्होंने अर्जुन के ऊपर बाणों की वर्षा प्रारम्भ कर दी। श्रीकृष्ण ने जब देखा कि अर्जुन हतोत्साह हो रहे हैं और भीष्म पितामह बराबर बाणों की वर्षा कर रहे हैं, तो उन्होंने रथ का पहिया ही निकाल लिया और उसी को चक्र की तरह घुमाने लगे।

भीष्म ने जब यह देखा कि श्रीकृष्ण ने अपनी यह प्रतिज्ञा कि "मैं युद्ध में शस्त्र नहीं उठाऊँगा" भंग कर दी तो उन्होंने युद्ध करना बन्द कर दिया और शस्त्र रखकर कहा—"महाराज, लीजिये यह आप की भेंट है। मैं तो केवल यह देखना चाहता था कि आप युद्ध में बिना शस्त्र उठाये कैसे रहते हैं।"

भीष्म की इन बातों से श्रीकृष्ण का क्रोध शान्त हो गया। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को तत्परता से युद्ध करने का आदेश दिया।

सन्ध्या हो चुकी थी। युद्ध समाप्त करने की भेरी बज गई और सब योद्धा विश्राम के लिए चले गये।

चौथे दिन युद्ध फिर आरम्भ हुआ। अर्जुन भीष्म के साथ और अभिमन्यु शल्यादि के साथ भिड़ गये। धृष्टद्युम्न ने कौरव सेना पर धावा बोल दिया। इस युद्ध में दुर्योधन का भाई दमनक और उसका पुत्र संयमनी मारा गया।

भीम और दुर्योधन में भी युद्ध हुआ। दुर्योधन ने पहले भीम को एक ही बाण में मूर्छित कर दिया परन्तु फिर भीम ने ऐसे बाण चलाये कि दुर्योधन का छक्का छूट गया और शल्य तो भाग ही गया। ऐसी अवस्था देख भगदत्त ने भीम पर आक्रमण किया। भीम को थका हुआ देखकर उसके पुत्र घटोत्कच ने कौरव दल पर आक्रमण कर कौरव दल के बड़े-बड़े योद्धाओं को नाकों चने चबवा दिये। सन्ध्या हो जाने से युद्ध बन्द करना पड़ा।

दुर्योधन की चिन्ता

जब से युद्ध आरम्भ हुआ तब से बराबर पाण्डवों का पल्ला भारी देख दुर्योधन की चिन्ता बढ़ गई। दुर्योधन भीष्म के पास गया और बोला—"पितामह, कौरव सेना बराबर मुँह की खा रही है। मालूम पड़ता है कि आप लोग जी लगाकर नहीं लड़ते।"

भीष्म ने कहा—"बेटा, हम लोग कोई कसर उठा नहीं रखते। परन्तु तुम यह नहीं जानते कि उनकी ओर श्रीकृष्ण

हैं। वे कितने नीतिज्ञ और चतुर हैं। उनके रहते पाण्डवों को हराना कोई हँसी-खेल नहीं है।" पाँचवें दिन भोर होते ही दोनों दल युद्ध के लिए सन्नद्ध हुआ। पाण्डवों ने श्येन व्यूह और कौरवों ने मकर व्यूह की रचना की। घनघोर युद्ध के बाद संध्या हो जाने पर युद्ध बन्द हुआ।

छठवें दिन फिर भोर होते ही योद्धागण समर-भूमि में आ डटे। भीम को दबते देखकर भीम की सहायता को अर्जुन आये।

भीष्म और भीम का युद्ध होने लगा।

इधर द्रोण और सात्यकि का युद्ध हो रहा था। सात्यकि भला द्रोण के आगे कब ठहर सकता था! वह बन्दी बना लिया गया। भीम ने सात्यकि को बन्दी होते देखकर उसे अपने रण-कौशल से छुड़ा लिया। भीष्म, द्रोण, शल्यादि सात्यकि को मुक्त देखकर अत्यन्त क्रुद्ध हुए और एक साथ भीम पर आक्रमण करने लगे। संध्या हो जाने के कारण युद्ध बन्द हो जाने से भीम को विपक्षी वीरों से मुक्ति मिली।

सातवें दिन फिर युद्ध प्रारम्भ हुआ। पाण्डवों ने वज्र-व्यूह बनाया और भीष्म पितामह ने मण्डल व्यूह। द्रोण ने द्रुपद के पुत्र को मार डाला और द्रुपद को लड़ाई के मैदान से भगा दिया। धृष्टद्युम्न के हाथों दुर्योधन पराजित हुआ।

आठवें दिन भीम ने कौरव पक्ष के सुनाम, पांड्य, आदित्य केतु, महोदर, बहाशी, विशालाक्ष आदि दुर्योधन

के आठ भाइयों का वध कर डाला। भीम ने आज के युद्ध में जो रुद्र-रुप धारण किया, उससे दुर्योधन काँप गया। रात हो जाने तक लड़ाई होती रही। एकदम अन्धकार होने पर युद्ध समाप्त हुआ।

भीष्म की भीषणता

कौरव सेना की पराजय के कारण दुर्योधन अत्यधिक दुःखी था। उसने सब लोगों से मन्त्रणा की। कर्ण ने कहा— "भीष्म के रहते मैं हथियार न उठाऊँगा। तुम मुझे सेनापति बना दो और बस कल ही पाण्डवों का नाम शेष पाओगे।"

यह बात सुनकर दुर्योधन भीष्म पितामह के पास पहुँचा और भीष्म पितामह से बोला, "पितामह, जब आपको पांडवों से ही अधिक ममता है, तो स्पष्ट क्यों नहीं कह देते ? मैं कर्ण को सेनापति बना दूँगा।"

यह सुनकर भीष्म पितामह को अत्यधिक दुःख हुआ। वे बोले कि अच्छा यदि यही बात है तो अब युद्ध देखना। या तो मैं युद्ध को जीत ही लूँगा या स्वयं न रहूँगा।

दुर्योधन ने भीष्म के मुँह से जब यह बात सुनी तो वह बड़ा प्रसन्न हुआ।

आज युद्ध का नवाँ दिन था। भीष्म दुर्योधन को वचन दे चुके थे। युद्ध आरम्भ होने पर पाण्डव सेना में खलबली मच गई। सेना तितर-बितर होने लगी। अर्जुन के तो मानो हाथ रुके जा रहे थे। श्रीकृष्ण अर्जुन को बहुतेरा उत्साह

दिला रहे थे किन्तु भीष्म के आगे अर्जुन ठहर नहीं पा रहे थे। हजारों वीरों को भीष्म ने धराशायी कर दिया। पांडवों की पराजय शीघ्र होती दीखने लगी। जब सन्ध्या हुई तो अर्जुन भीष्म के शिविर में गये। अर्जुन ने जाकर बड़े विनय भरे शब्दों से अपनी जीत का उपाय पूछा। भीष्म ने कहा—"वह मेरे हाथ में शस्त्र रहते सम्भव नहीं। परन्तु तुम एक काम कर सकते हो। तुमको विदित है कि मैं नपुंसक के आगे हथियार नहीं चलाऊँगा और तुम्हारी सेना में शिखण्डी नामक एक नपुंसक भी है। वह मेरे ऊपर बाणों की वर्षा करे तो मैं उस पर प्रत्याक्रमण नहीं करूँगा।"

अर्जुन का मन यह सुनकर लज्जा से भर गया। वे अपने मन में अपने को धिक्कारने लगे। परन्तु श्रीकृष्ण ने उल्टी-सीधी बात समझा दी।

भीष्म का पतन

युद्ध का दसवाँ दिन प्रारम्भ हुआ। भीष्म ने आज फिर विकराल रूप धारण कर लिया। पांडव सेना में हाहाकार मचने लगा। भीष्म के बाणों का प्रत्युत्तर किसी से देते न बनता था। रथ के मार्ग शवों से अवरुद्ध हो गये। भीष्म ने दस हजार गजारोही, दस हजार अश्वारोही और एक लाख पैदल सैनिकों को मार डाला।

इतने में ही शिखण्डी भीष्म के सामने आ गया। भीष्म

ने जब शिखंडी को सामने आते देखा, तो वे अर्जुन की ओर घूम गये। अर्जुन उनके बाणों से व्याकुल हो गये। इस निराशावस्था में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को पिछली रात वाली बात याद दिला दी, तब तो अर्जुन को कुछ सन्तोष हुआ। वह तो पहले से ही युद्ध कर रहा था, अब अर्जुन भी भीष्म के ऊपर घोर बाण-वर्षा करने लगे। फिर भी भीष्म सब आक्रमण से अपने को बचाते रहे। पांडव पक्ष के लोगों ने सोचा कि जब तक ये जीवित हैं, तब तक दाल गलनेवाली नहीं है। अतएव सब लोग उन्हीं के ऊपर टूट पड़े।

भीष्म ने सोचा कि अन्य किसी प्रकार से मरने की अपेक्षा युद्ध में मरना अच्छा है। क्षत्रिय के हाथ से युद्ध में मरा तो सद्‌गति होगी। इधर अर्जुन बाणों को दनादन मार रहे थे। पितामह का शरीर एकदम चलनी की तरह छिद गया। वे सन्ध्या होते-होते लुढ़ककर नीचे गिर पड़े।

कौरव सेना ने जब देखा कि पितामह लुढ़क गये तो वहाँ हाहाकार मच गया। लोग उनके शैय्या का प्रबंध करने दौड़े परन्तु पितामह ने सबको मना कर दिया।

भीष्म की शरशय्या

जब सन्ध्या हुई तो दोनों दल के वीर पितामह के पास आये। सबको एक साथ अपने पास देखकर पितामह ने कहा, ''देखो! मेरा सिर लटक रहा है। मुझे तकिये की आवश्यकता

है ।" अर्जुन उनके मन का भाव समझ गये और उनके लिए बाणों का तकिया बना दिया ।

दुर्योधन के परिचारक पितामह की सेवा में नियुक्त कर दिये गये । राजवैद्य चिकित्सा के लिए आये परन्तु पितामह ने सबको मना कर दिया ।

पितामह को प्यास लगने पर कौरवों के सेवक नाना प्रकार के सुगन्धित जलों को सोने की झारियों में लाये परन्तु पितामह ने अर्जुन को पुकारा ।

अर्जुन तुरन्त पितामह के मन की बात ताड़ गये । अर्जुन ने पृथ्वी में ऐसा बाण मारा कि बाण रसातल को पार कर गया और वहाँ से एक सोता ऊपर की ओर फूट निकला । इस सोते का जल पीकर भीष्म तृप्त हो गये और अर्जुन को आशीर्वाद दिया ।

द्रोणाचार्य का सेनापतित्व

जब कर्ण ने यह सुना कि भीष्म सर्वथा अशक्त हो गये हैं, तो कर्ण दुर्योधन के पास आये। कर्ण ने दुर्योधन से कहा—"भीष्म बराबर पाण्डवों का पक्ष ले रहे थे और पक्षपातपूर्ण युद्ध कर रहे थे। अब भी मुझको सेनापति बना दो, देखना पांडव कहाँ जाते हैं।" अश्वत्थामा भी वहीं था। वह भी चाहता था कि यदि वह सेनापति बन जाय तो बड़ा अच्छा हो। परन्तु जब कर्ण की इस तरह की बातें सुनी तो कहने लगा—"ओ राधेय, जिसके कुल का पता नहीं, उसको भी कहीं सेनापति बनने का अधिकार है।" अश्वत्थामा के इतना कहते ही कर्ण क्रोध से लाल हो गया। दुर्योधन दोनों को मना कर रहा था परन्तु मानता कौन था? दोनों को लड़ते देख दुर्योधन ने दोनों को छोड़ दिया और जाकर द्रोण से प्रार्थना की कि वे सेनापतित्व का भार ग्रहण करें।

द्रोण सेनापति बनाये गये। उन्होंने युधिष्ठिर को कैद कर दुर्योधन को सौंप देने की प्रतिज्ञा की।

ग्यारहवें दिन जब युद्ध आरम्भ हुआ तो द्रोण ने सेना के छक्के छुड़ा दिये। युधिष्ठिर के ऊपर तो उनकी विशेष दृष्टि थी। युधिष्ठिर की सहायता के लिए शूरसेन आ पहुँचे।

द्रोण ने जब देखा कि साधारण रूप से युधिष्ठिर नहीं फँसते हैं तो उन्होंने युधिष्ठिर के ऊपर नागफाँस चलाना चाहा। अर्जुन दूसरी ओर लड़ने में व्यस्त थे। श्रीकृष्णजी ने देखा कि युधिष्ठिर फँसना ही चाहते हैं तो अर्जुन को उन्हें बचाने के लिए प्रेरित किया। अर्जुन ने ऐसा बाण मारा कि द्रोण के हाथ से नागफाँस गिर पड़ा, इससे द्रोण को बड़ा क्रोध आया।

द्रोण ने बारहवें दिन चक्रव्यूह की रचना की। इस चक्रव्यूह का भेदना सिवा अर्जुन के और कोई नहीं जानता था। सबको अधीर होते देख अर्जुन का पुत्र अभिमन्यु आगे बढ़ा और बोला—"ताऊजी! चिन्ता किस बात की है? चक्रव्यूह भेदन तो मैं जानता हूँ पर बाहर नहीं आना जानता।" युधिष्ठिर ने कहा—"अच्छा तुम आगे-आगे चलो हम लोग पीछे-पीछे चलेंगे।" महाराज ने उस दिन का सेनापति अभिमन्यु को बनाया।

सुभद्रा ने जब सुना कि उसका पुत्र आज सेनापति के पद पर आसीन होगा तो उसकी प्रसन्नता का कोई ठिकाना न रहा।

सेनापति होने की प्रसन्नता में अभिमन्यु अपनी स्त्री उत्तरा के पास गया। अपशकुन होने से उत्तरा रण में जाने के लिए उसे मना करने लगी। परन्तु अन्त में वह भी राजी हो गयी।

तदनन्तर वीर अभिमन्यु चक्रव्यूह भेदने के लिए चला। वह कौरव-सेना को साग-पात की तरह काटता हुआ आगे बढ़ने लगा। भीमादि योद्धाओं ने अभिमन्यु का साथ देना चाहा परन्तु जयद्रथ के कारण अन्य कोई अन्दर न जा सका। जब दूसरे फाटक पर अभिमन्यु पहुँचा, तो वहाँ द्रोण खड़े थे। अभिमन्यु ने ऐसा शौर्य-प्रदर्शन किया कि द्रोण को हार माननी पड़ी। तीसरे फाटक पर कर्ण खड़ा था। कर्ण ने अर्जुन को न देखकर ताना मारना शुरू किया। अभिमन्यु को और भी क्रोध आ गया। बड़ा घमासान युद्ध हुआ और कर्ण बेहोश हो गया।

अभिमन्यु की वीरता से दुर्योधन काँप उठा। दुर्योधन ने सब लोगों को ललकारा।

कौरव सेना के सब वीरों ने मिलकर अभिमन्यु के ऊपर एक साथ आक्रमण प्रारम्भ कर दिया। किसी ने उसके घोड़े को मार गिराया तो किसी ने उसके धनुष को काटा, द्रोण, कर्ण ने मिलकर उसकी तलवार और ढाल भी काट गिराई। अब अभिमन्यु निहत्था हो गया, उसका रथ भी टूट गया। तब उसने रथ का पहिया उठा लिया और उसी को चक्र की तरह चलाने लगा परन्तु अश्वत्थामा ने उसके भी टुकड़े कर डाले। जयद्रथ ने अभिमन्यु के सिर पर गदा से प्राणघातक प्रहार किया।

बेचारा अभिमन्यु निहत्था था। बाणों से उसका शरीर

छिद गया था। दुःशासन ने जब देखा कि अब तो अभिमन्यु मृतप्राय हो गया है तो उसके सिर पर बड़े जोर से गदा मारी और वीर अभिमन्यु अपनी अक्षयकीर्ति छोड़कर स्वर्ग सिधारा।

जयद्रथ-वध

अभिमन्यु की मृत्यु का समाचार सुनकर पाण्डव दल पर वज्रपात हुआ। युधिष्ठिर आदि रोने लगे। जब रात्रि हुई और संसप्तकों और त्रिगर्तों को युद्ध में परास्त कर अर्जुन लौटे तो उन्होंने पाण्डव शिविर की विचित्र हालत देखी। अर्जुन को देखकर युधिष्ठिर गला फाड़-फाड़कर रोने लगे और अर्जुन को दुःखद समाचार सुना दिया।

अर्जुन यह समाचार सुनकर बहुत दुःखी हुए। जब श्रीकृष्ण ने यह देखा कि अर्जुन बहुत दुःखी हैं तो उन्होंने कहा, "अर्जुन क्या तुम्हारा पुत्र क्षत्रिय नहीं था? क्षत्रिय युद्ध में मरकर ही स्वर्ग प्राप्त करते हैं। तुम स्वयं धैर्य से काम लो और सबको चुप कराओ।"

अर्जुन ने प्रतिज्ञा की कि "यदि कल सूर्यास्त तक पापी जयद्रथ का वध न कर डालूँगा तो स्वयं जलती हुई चिता में प्रवेश कर प्राण त्याग दूँगा।"

यह समाचार सुनकर कौरव बहुत घबराए। दुर्योधन जयद्रथ को लेकर द्रोण के पास गये और वहाँ जाकर अर्जुन

की इस भीषण प्रतिज्ञा का हाल सुनाया। द्रोण ने अभयदान देकर जयद्रथ को वापस भेज दिया।

तेरहवें दिन सुबह होते-होते आचार्य द्रोण ने शकट व्यूह की रचना की। जयद्रथ को उसके बीच में रख दिया। जयद्रथ प्रसन्न था कि आज तो अर्जुन को अवश्य ही जीते जी जल जाना पड़ेगा।

अर्जुन युद्ध के लिए आये तो उन्होंने सामने द्रोण को देखा—आज, अर्जुन द्रोण से बिना लड़े आगे बढ़ जाना चाहते थे, परन्तु द्रोण तो जयद्रथ को अभयदान दे चुके थे, जाने कैसे देते ? किन्तु श्रीकृष्ण ने ऐसा रथ हाँका कि द्रोण पीछे रह गये और अर्जुन कौरवों की सेना को चीरते हुए बहुत दूर आगे निकल गये।

जयद्रथ तक पहुँचते-पहुँचते अर्जुन की रण-गति इतनी तीव्र हो गई कि कौरव सेना के छक्के छूट गये।

इधर युधिष्ठिर ने अर्जुन की और सहायता करने के लिए सात्यकि तथा भीम को भेज दिया।

भीम को द्वार पर ही द्रोण मिले। द्रोण ने भीम से कहा—"भीम ! तुम लौट जाओ अन्यथा बुरा होगा।"

भीम को इन बातों को सुनकर ऐसा क्रोध आया कि उन्होंने इतनी जोर से गदा चलाई कि यदि द्रोण रथ से नीचे न उतर आते तो उनका वृद्ध शरीर नष्ट हो जाता।

भीम आगे बढ़ते गये। यह देखकर कर्ण भीम से आ भिड़ा।

भीम तो गदा-युद्ध में बड़े प्रवीण थे। परन्तु कर्ण दूर से ही अपने बाणों द्वारा भीम पर आक्रमण कर रहे थे। भीम ऐसे समय में बिल्कुल हतबुद्धि हो गये। फिर कर्ण ने कुन्ती से की हुई प्रतिज्ञा का स्मरण करके भीम को छोड़ दिया।

दिन का चौथा पहर बीत रहा था। अर्जुन का प्रण अभी पूरा नहीं हुआ था। बादलों ने सूर्य को ढँक लिया जिससे कि सन्ध्या के आसार दिखाई देने लगे थे।

इधर कौरव सन्ध्या हुई देखकर बड़े प्रसन्न हुए कि अब तो अर्जुन चिता में जलकर भस्म होगा। अर्जुन के मर जाने पर पाण्डवों को सरलता से जीत लिया जायगा। कौरवों ने जयद्रथ को भी अर्जुन के चिता-प्रवेश के उत्सव को देखने के लिए बुलाया। जयद्रथ के चारों ओर द्रोण आदि अनेक महारथी खड़े थे।

अन्धकार अब और बढ़ गया। कौरव अब एकदम निश्चिंत हो गये। इतने में बादल हट गये और श्रीकृष्ण ने अर्जुन को दिखाया कि अभी सूर्य चमक रहा है; जयद्रथ ने सूर्य देखने के लिए ज्यों ही अपनी गर्दन ऊपर उठाई तबतक तो अर्जुन ने उसका शिरच्छेद कर डाला।

घटोत्कच-वध

जयद्रथ के मरने से कौरव बड़े ही दुःखी हुए। चौदहवें

दिन दुर्योधन की आज्ञा पाकर कर्ण पाण्डवों की सेना का क्षय करने लगा। युधिष्ठिर ने अर्जुन से कर्ण को रोकने के लिये कहा परन्तु श्रीकृष्ण वहाँ रथ न ले जाते थे। जब श्रीकृष्ण ने देखा कि सचमुच कर्ण बड़ा अनर्थ कर रहा है तो उन्होंने घटोत्कच को कर्ण से लड़ने के लिये भेज दिया। जब कर्ण घटोत्कच से लड़ते-लड़ते पस्त होने लगे तब कर्ण ने सोचा कि अब और समय खोना ठीक नहीं है। कर्ण ने जो अमोघ अस्त्र अर्जुन के लिये रख छोड़ा था उससे घटोत्कच का वध कर डाला।

घटोत्कच जैसे वीर के मर जाने से पाण्डव सेना में बड़ा हाहाकार मच गया। परन्तु श्रीकृष्णजी को इससे तनिक भी दुःख न हुआ। जब अर्जुन ने इसका कारण पूछा तो भगवान ने कहा कि जिस शक्ति को कर्ण ने तुम्हें मारने के लिये रख छोड़ा था उस अमोघ शक्ति का उपयोग उसने घटोत्कच पर कर दिया। अब तुम कर्ण को जीते हुए भी मरा समझो।

द्रुपद-विराट-वध

पन्द्रहवें दिन दुर्योधन की प्रार्थना पर द्रोण ने कहा, "आज मैं किसी बड़े योद्धा का वध अवश्य करूँगा।"

आचार्य की बात सुनकर दुर्योधन बड़ा प्रसन्न हुआ।

आज युद्ध आरम्भ होते ही आचार्य द्रोण से युधिष्ठिर भिड़ गये। युधिष्ठिर की सहायता के लिये एक ओर से द्रुपद

और दूसरी ओर से अर्जुन आए। आचार्य द्रोण को थका देखकर विराट भी आ गये। अर्जुन तो केवल युधिष्ठिर की रक्षा करते रहे परन्तु ये दोनों आचार्य के ऊपर टूट पड़े। थोड़ी देर तक तो बड़ा घनघोर युद्ध हुआ परन्तु आचार्य ने विराट और द्रुपद दोनों को धराशायी कर दिया।

जब धृष्टद्युम्न ने देखा कि उसके पिता की मृत्यु हो गई है, तो उसने प्रतिज्ञा की कि यदि मैं द्रोण को न मारूँ तो असली क्षत्रिय पुत्र नहीं।

द्रोणाचार्य-वध

आचार्य का भयङ्कर रूप देखकर अर्जुन को बड़ी चिन्ता हुई।

श्रीकृष्ण ने एक तरकीब सोची। अवन्ति-नरेश इन्द्रवर्मा के पास एक अश्वत्थामा नामक हाथी था। भीम ने उसको मार डाला। श्रीकृष्ण तथा अन्य लोगों ने बड़ी जयध्वनि की और "अश्वत्थामा मारा गया" कहकर सब लोग बड़े जोर-जोर से चिल्लाने लगे। जब यह युधिष्ठिर ने सुना तो युधिष्ठिर ने अश्वत्थामा हतःनरो वा कुञ्जरो वा, कहा। युधिष्ठिर के मुख से अश्वत्थामा की मृत्यु का समाचार सुनकर पाण्डव इतने जोर से शंख, घड़ियाल, घंटे बजाने लगे कि द्रोण और कुछ न सुन सके।

युधिष्ठिर के मुँह से यह बात सुनकर द्रोण को अश्व-

त्थामा की मृत्यु का निश्चय हो गया। उन्होंने अपने मन में सोचा कि जिस पुत्र की ममता से मैंने ब्राह्मण होकर क्षत्रिय-धर्म स्वीकार किया, तपस्वी होने के बदले धनुर्धर बना, क्षमा और शान्ति के बदले प्रतिहिंसा और प्रवञ्चना को अपने हृदय में स्थान दिया—जब वही नहीं रहा तो मेरा जीना व्यर्थ है, ऐसा सोचकर उन्होंने हथियार फेंक दिये।

पिता की मृत्यु का बदला लेने का अवसर धृष्टद्युम्न खोज ही रहा था। ऐसी अवस्था में धृष्टद्युम्न ने द्रोण का सिर काट डाला।

अश्वत्थामा दूसरी ओर श्राद्ध कर रहा था, यह समाचार सुनकर वह बड़ा क्रोधित हुआ। पांडवों के नाश की प्रतिज्ञा कर वह आगे बढ़ा और उसने आते ही नारायणास्त्र छोड़ा।

नारायणास्त्र का प्रतिकार श्रीकृष्ण जानते थे। उन्होंने सब लोगों से साष्टाँग नमस्कार करने को कहा। सब लोगों ने ऐसा ही किया। अश्वत्थामा ने जब देखा कि उसका नारायणास्त्र विफल हो गया है तो उसको बड़ा दुःख हुआ।

अश्वत्थामा ने पांडव वीरों को मारना प्रारम्भ किया। अर्जुन और श्रीकृष्ण सभी चिन्तित हो गये।

अर्जुन स्वयं उससे लड़ने को बढ़े। अश्वत्थामा ने जब अर्जुन को आते देखा तो भीषण आग्नेयास्त्र का प्रयोग किया।

आग्नेयास्त्र चलाते ही पांडव सेना में त्राहि-त्राहि मच गई। ऐसा मालूम पड़ने लगा कि समस्त संसार अभी भस्म हो जायगा। जब तक अर्जुन प्रतिकार के लिये वरुणास्त्र निकालें तब तक पांडवों की एक टुकड़ी जलकर भस्म हो गई।

सन्ध्या हो गई थी अतः युद्ध बन्द कर दिया गया।

कर्ण का सेनापतित्व

आज युद्ध का सोलहवाँ दिन था। दुर्योधन ने सबकी अनुमति से कर्ण को सेनापति चुना।

दुर्योधन को भरोसा था कि कर्ण के हाथों पांडवों का वध होगा। भीष्म-द्रोण ऊपर से तो इधर से ही लड़ रहे थे परन्तु उनके हृदय में पाण्डवों के प्रति अगाध प्रेम था। परन्तु कर्ण के हृदय में मेरे सिवाय अन्य किसी के प्रति स्थान नहीं है।

कर्ण ने सेनापति का भार ग्रहण करते ही मकर व्यूह की रचना की। भीम आज हाथी पर चढ़कर लड़ाई के मैदान में उतरे थे। भीम ने आते ही क्षेममूर्ति को रणचण्डी की भेंट चढ़ाया।

इसके बाद नकुल और कर्ण का युद्ध होने लगा। नकुल कर्ण के हाथों बुरी तरह से हारे। कर्ण ने कुन्ती से की गई प्रतिज्ञा के अनुसार नकुल को छोड़ दिया।

इधर युधिष्ठिर और दुर्योधन में भी युद्ध हो रहा था। युद्ध में दुर्योधन बेहोश होकर गिर पड़ा तो भीम ने युधिष्ठिर से कहा—"भाई! आप इसको न मारें। मैं इसे मारने की प्रतिज्ञा कर चुका हूँ।"

सत्रहवें दिन अर्जुन को मारने की प्रतिज्ञा करके कर्ण अपने हाथों में परशुराम के दिये हुए अस्त्र-शस्त्र लेकर आया।

अर्जुन उस समय त्रिगर्तों से युद्ध कर रहे थे। कर्ण ने पाण्डव सेना को काटना शुरू कर दिया। अर्जुन ने त्रिगर्तों के राजा सुशर्मा का काम तमाम कर डाला। भीम ने दुर्योधन के छः भाइयों को परलोक पहुँचा दिया। इधर कर्ण ने युधिष्ठिर पर भयङ्कर आक्रमण किया। इस आक्रमण से युधिष्ठिर लाचार होकर अपने शिविर चले गये।

भीम को यह देखकर बड़ा क्रोध आया। वे कौरव सेना के ऊपर एकदम टूट पड़े। उधर से त्रिगर्त-सेना को हराकर अर्जुन आए और कर्ण की मार से युधिष्ठिर का युद्धभूमि से चले जाना सुनकर कौरवों पर टूट पड़े।

दुःशासन-वध

भीम ने देखा कि कर्ण ने अपने बाणों से शिखण्डी को मार डाला तो भीम बड़े क्रोध से कर्ण की ओर झपटे। परन्तु बीच में ही दुःशासन मिल गया। दुःशासन ने भीम को देखकर कहा, "ओ भीम ! इधर-उधर कहाँ भागता है, सामने आ।"

भीम उससे भिड़ गये। पहिले तो बाणों की चोट से भीम को मुँह की खानी पड़ी परन्तु उसने सँभलकर दुःशासन के सिर पर गदा का ऐसा प्रहार किया कि दुःशासन का सिर चकनाचूर हो गया।

इसी समय भीम को सहसा कौरव सभा में किये गये अपने प्रण की याद आ गई। उन्होंने एक तलवार दुःशासन के हृदय में भोंक दी। उसके हृदय से रक्त का फव्वारा छूट निकला, भीम उसको पी गये। सब खड़े-खड़े विस्मय और आश्चर्य से देखते रहे।

दुःशासन के रक्तपान से भीम मस्त हाथी की तरह झूम उठे। उनका सारा शरीर लहू से लथपथ हो गया था। समर में योद्धागण उनके लोहू से लथपथ विशाल शरीर को देखकर भयभीत हो गए।

कर्ण-वध

कर्ण के बाणों से व्याकुल होकर युधिष्ठिर अपने शिविर में चले गये, यह बात अर्जुन के शरीर में शक्ति एवं स्फूर्ति का सञ्चार कर रही थी। कौरव पक्ष के अनेक योद्धागण धड़ाधड़ गिर रहे थे। अर्जुन के इस पराक्रम और शौर्य का सब वीरों ने लोहा मान लिया था।

अश्वत्थामा ने दुर्योधन को युद्ध रोकने की सलाह दी परन्तु दुर्योधन किसी की सुननेवाला न था। भीम ने जिस पाशविक स्वरूप से दुःशासन को मारा वह अभी भी दुर्योधन को पीड़ा दे रहा था।

युद्ध बन्द करने का प्रस्ताव रद्द हो गया। कर्ण और अर्जुन का बड़े जोरों से युद्ध चल रहा था। एक बार अर्जुन के धनुष की डोरी उतर गई। जब तक अर्जुन उसको चढ़ाने

लगे तब तक तो कर्ण ने अर्जुन के रथ को टिड्डी दल की भाँति बाणों से घेर लिया। यह देखकर कौरव सेना के सब व्यक्ति हर्ष से जयघोष करने लगे जिसे सुनकर अर्जुन क्रोधित हो गए। डोरी फिर से चढ़ाकर उन्होंने बात की बात में सारे बाण काट डाले।

अब कर्ण ने अर्जुन के ऊपर नागास्त्र छोड़ा। शल्य ने कर्ण का ध्यान बँटाने लिए कहा—"क्या सायंडिल अस्त्रों का प्रयोग कर रहे हो ?"

नागास्त्र सचमुच बड़ा भयङ्कर अस्त्र था। यदि श्रीकृष्ण ने अर्जुन का रथ नीचे झुका न लिया होता तो. अर्जुन का काम ही तमाम हो गया होता। फिर भी अर्जुन का किरीट टूट गया।

तब कर्ण ने वारुणास्त्र चलाया जिसका उत्तर अर्जुन ने वायव्यास्त्र द्वारा दिया। बड़ी फुर्ती के साथ अर्जुन ने ऐसा बाण मारा कि कर्ण मूर्छित हो गया। शल्य कर्ण के रथ को भगा ले जाना चाहता था, तब तक अर्जुन ने ऐसा बाण मारा कि उसका रथ पृथ्वी में धँस गया।

थोड़ी देर में कर्ण की मूर्च्छा टूट गई। सचेत होकर कर्ण ने ऐसा प्रहार किया कि अर्जुन कुछ क्षणों के लिये अचेत हो गये। चेतना आने पर कर्ण को रथ से उतरा देखकर अर्जुन चुप बैठ गया। भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को चुप देखा तो कहा, "अर्जुन चुप क्यों बैठे हो ? क्या इसलिये



कर्ण-वध

कि कर्ण रथ पर नहीं है, तुम धर्म-मर्यादा की रक्षा कर रहे हो ? यह वही कर्ण है जिसने भरी सभा में द्रौपदी का अपमान होते देख तुमलोगों को बोली मारी थी। अधर्मी ने निहत्थे अभिमन्यु को मारा था। वह ऊपर आने न पावे और तुम उसका तमाम कर डालो।"

श्रीकृष्ण की आज्ञा पाकर अर्जुन ने अञ्जलि नामक भयंकर अस्त्र से कर्ण को मार डाला। भीमादि सब इससे बड़े आनन्दित हुए।

कर्ण की मृत्यु से दुर्योधन को अपार दुःख हुआ।

शल्य का सेनापतित्व

कर्ण के मर जाने पर दुर्योधन को सब दिशायें शून्य दिखाई देने लगीं। वह हतबुद्धि हो गया। अब आगे किया क्या जाय, उसकी विचार-धारा में नहीं आता था।

आज युद्ध का सत्रहवाँ दिन था। कृपाचार्य ने आकर कहा—"महाराज! अब आगे युद्ध करने से कोई प्रयोजन नहीं। अब हमें सन्धि कर लेनी चाहिये।"

दुर्योधन ने कहा—"महाराज, आप क्या कह रहे हैं? जिस युद्ध में मैं अपने भाइयों को, सगे-संबंधियों को कटवा चुका हूँ, उस युद्ध को केवल अपने जीने के लिए बन्द कर दूँ! मुझे मरकर स्वर्ग जाना कहीं अधिक पसन्द है, किन्तु जिन पांडवों को दास बना चुका हूँ उनके आगे नहीं झुकूँगा।"

कृपाचार्य बेचारे चुप हो गये।

अब यह प्रश्न उठा कि सेनापति किसको बनाया जाय? चारों तरफ दृष्टि दौड़ाने पर भी कोई योग्य व्यक्ति न मिला। एक बार अश्वत्थामा के ऊपर दृष्टि गई, परन्तु अश्वत्थामा ने कहा कि महाराज! शल्य सबसे अधिक उपयुक्त व्यक्ति हैं। अट्ठारहवें दिन के लिये सेनापति शल्य बनाये गये।

शल्य वध

शल्य सेनापति के रूप में समरभूमि में आए। उन्होंने अपनी सेना को 'सर्वतोभद्र' व्यूह में खड़ा किया। मद्रदेशीय अन्य चुने हुए वीरों को लेकर वे द्वार पर आ डटे।

युद्ध बड़ा घनघोर और उग्र रूप धारण करने लगा। इस समय नकुल ने कर्ण के पुत्र चित्रसेन और सुषेन को मार डाला।

शल्य ने पाण्डव सेना की नाक में दम कर दिया। भीम से यह सब न देखा गया तो वह गदा-युद्ध में शल्य से जा भिड़े। दोनों लड़ते-लड़ते एक दूसरे के प्रहार से अचेत हो गये।

जब युधिष्ठिर ने यह सुना कि भीम शल्य के प्रहार से मूर्च्छित हो गये हैं तो उन्होंने शल्य को मारने की प्रतिज्ञा की। युधिष्ठिर ने यह प्रतिज्ञा कर तो ली, परन्तु इसकी चिन्ता और भाइयों को हुई। भीम आगे, अर्जुन पीछे और धृष्टद्युम्न और सात्यकि अगल-बगल और नकुल तथा सहदेव रथ की रक्षा में लग गये। युधिष्ठिर ने अपना रथ आगे बढ़ाया। शल्य और युधिष्ठिर में बड़ी भयानक लड़ाई हुई। शल्य का रथ टूट गया। सारथि परलोक सिधारा। घोड़े वहीं गिर पड़े। अश्वत्थामा ने तुरन्त अपना रथ दे दिया।

इतने में युधिष्ठिर ने ऐसा बाण मारा कि शल्य मूर्च्छित होकर गिर पड़े। तब तक कृपाचार्य ने युधिष्ठिर के सारथि

को मार डाला। भीम ने शल्य के धनुष के दो टुकड़े कर दिये।

अब शल्य घबरा गये। तलवार लेकर नीचे उतर आये, भीमसेन ने उनकी तलवार अपने बाणों से काट डाली। इसी बीच युधिष्ठिर ने भी ऐसी शक्ति का प्रयोग किया कि मद्रराज शल्य सदा के लिये वसुन्धरा पर सो गये।

सर्व-संहार

दुर्योधन ने अपनी भागती हुई सेना को ढाढ़स दिया और स्वयं सेनापति बना। इधर राजा शल्य ने वेग से धृष्टद्युम्न पर आक्रमण किया। धृष्टद्युम्न ने आक्रमण का वेग न सँभाल सकने के कारण रथ से कूदकर शल्य के हाथी पर अपनी गदा का ऐसा प्रहार किया कि हाथी मर गया और उसके गिरने के कारण शल्य के प्राणपखेरू उड़ गये। कौरव सेना में अब केवल शकुनि, अश्वत्थामा और दुर्योधन रह गये थे। नकुल ने जब देखा कि शकुनि सबसे आगे हैं तो उनका खून खौलने लगा। वह उसे देखकर बोले—"अरे दुष्ट ! यह जुआ का खेल नहीं है जो उमङ्ग में आया है।" जब तक नकुल यह सब कह ही रहा था कि भीम ने ऐसा प्रहार किया कि बेचारे को प्राण त्याग करना पड़ा।

दुर्योधन के बचे हुए २२ भाइयों को भी आज भीम एवं अर्जुन ने स्वर्गलोग पहुँचा दिया। कौरवों की ११ अक्षौहिणी सेना रणचण्डी का केवल १८ दिन का भोजन थी।

दुर्योधन पलायन

दुर्योधन अपनी पराजय से इतना दुःखी हो गया कि वह और आगे अपनी पराजय देखने में असमर्थ होकर भाग गया। कुछ दूर आगे उसका एक तालाब था, वहीं जाकर छिप गया। रास्ते भर वह यही सोचता जाता था कि यदि मैंने पहिले विदुर का कथन मान लिया होता तो आज यह दिन क्यों आता ?

जब दुर्योधन इस तरह भाग रहे थे, तो सञ्जय ने उन्हें देख लिया, और भागकर जाने का कारण पूछा—दुर्योधन ने कहा— पिताजी से जाकर कह देना कि दुर्योधन अब और जीवित नहीं रहना चाहता।

इतने में अश्वत्थामा आदि दुर्योधन को खोजते-खोजते आ गए और बोले, महाराज ! इस तरह निराश होने की क्या आवश्यकता है ? हम लोग तो आपकी रक्षा के लिये सदैव तत्पर हैं।

दुर्योधन ने कहा, आज तो मुझे यहीं विश्राम करने दो फिर कल कुछ स्वस्थ होकर युद्धक्षेत्र में आऊँगा।

जब यह बातें हो रही थीं तो कुछ व्याध उधर से निकल रहे थे, उन्होंने दुर्योधन के छिपने की बात सुन ली और जाकर भीम से कह दी।

भीम-दुर्योधन-युद्ध

पाण्डव दुर्योधन को न पाकर बड़े परेशान थे। चारों ओर दूत भेजे गये फिर भी उसका कोई पता न लगा। जब अनायास ही व्याधों के मुँह से उन्होंने दुर्योधन का पता पा लिया तो वे लोग झटपट उस ओर दौड़ पड़े। उस तालाब में एक जलस्तम्भ था। सब लोगों ने यह विचार किया कि अब दुर्योधन को इसमें से बाहर कैसे निकाला जाय? श्रीकृष्ण ने एक युक्ति बताई। श्रीकृष्ण ने कहा—"देखो दुर्योधन बड़ा आत्माभिमानी है, तुम लोग यदि उसको तीखे-तीखे वचन कहोगे तो वह झट भीतर से बाहर निकल आवेगा।"

भीम ने कहा—"क्यों दुर्योधन! अपने सगे-सम्बन्धियों का सफाया करके अब स्वयं अपनी प्राण-रक्षा हेतु इस तालाब में आ छिपे हो? क्या यही वीर के लक्षण हैं? यदि तुममें लेशमात्र भी वीरत्व हो तो आओ, आकर मारो या मरो।"

दुर्योधन पानी के अन्दर से ही बोला—"आप लोग यह न समझें कि मैं डरकर भाग आया हूँ, परन्तु मैं बहुत थक गया हूँ, अतः विश्राम लेने आया हूँ। मेरे सभी भाई-बन्धु, इष्ट-मित्र तो इस युद्ध में काम आ चुके हैं, मैं अकेला जीकर करूँगा भी क्या?"

भीम ने और भी ताने कसने शुरू किये तो वह जल के बाहर निकल आया और बाहर आते ही उसने कहा कि उसे

हथियार दिया जाय। सब हथियार उसको दिये गये। उसने उनमें से गदा को चुन लिया।

बड़े उत्साह से युधिष्ठिर बोले उठे—"दुर्योधन! जिसको तुम्हारी इच्छा हो, उसको चुन लो।"

दुर्योधन ने भीम को चुना। इसी समय वहाँ बलरामजी आ गये थे। बलरामजी ने ही दोनों को गदा की शिक्षा दी थी। जब वे दोनों वहाँ संकीर्ण स्थल में लड़ने को उद्यत् हुए, तो बलराम के कहने पर दोनों कुरुक्षेत्र के मैदान में आए।

दुर्योधन-वध

सब लोग कुरुक्षेत्र के मैदान में युद्ध को देखने के लिये आ डटे। योद्धा अपनी-अपनी गदा सँभाल रहे थे। भीम ने दुर्योधन से कहा, ओ नीच! आज तेरा अन्तिम दिन है, अपने जीवन के पापों को याद करले।

दुर्योधन ने कहा—अरे व्यर्थ प्रलापी! बकवाद क्या करता है? यदि बल-पौरुष हो तो सामने आकर युद्ध कर।

बस फिर क्या था, गदा-युद्ध प्रारम्भ हो गया। दुर्योधन भी एक कुशल योद्धा था। भीम तो दुर्योधन के वार बचाते-बचाते ही थक गये। भीम जब कभी कोई वार करते तो उसका दुर्योधन पर कोई असर न होता।

एक बार मौका पाकर दुर्योधन ने ऐसा मारा कि भीम के स्थान पर यदि वहाँ और कोई होता तो निश्चय ही यम-पुरी का अतिथि हो जाता। भीम इस चोट से बड़े क्रोधित

हुए और उन्होंने ऐसी गदा मारी कि दुर्योधन बेहोश हो गया। पाण्डव सेना एकदम जयनाद करने लगी। दुर्योधन ने मूर्छा भङ्ग होने पर ऐसा जौहर दिखाया कि भीम के छक्के छूट गये।

श्रीकृष्ण ने सोचा कि इस दुष्ट से धर्म-युद्ध में जीतना कठिन है, तो उन्होंने अर्जुन को इशारा किया कि वे भीम को जाँघ पर मारने को कहें। अर्जुन ने अपनी जाँघ पर जोर से थप्पड़ मारा। यह देखकर भीम को अपनी प्रतिज्ञा की याद हो आई और तुरन्त भीम ने दुर्योधन की जाँघ में गदा दे मारी। दुर्योधन उससे पृथ्वी पर लोट गया। भीम ने उसके सिर पर लात मारी और कहा—"ले नीच, द्रौपदी के अपमान का फल भोग।"

बलराम ने जब देखा कि भीम ने गदा-युद्ध के नियमों के खिलाफ काम किया है, तो अपना हल लेकर भीम को मारने चले। अन्त में वे किसी तरह श्रीकृष्णजी के समझाने पर माने, किन्तु क्रुद्धावस्था में ही वहाँ से चल दिये।

अनाथ कौरव-कामिनियाँ

इस रोमांचकारी युद्ध का हाल सुनकर कौरव-शिविर में एकदम रोना-पीटना प्रारम्भ हो गया। सब बालक, वृद्ध, स्त्रियाँ मुँह फाड़-फाड़कर रोने लगीं। स्त्रियों का आर्तनाद सुनकर सबका हृदय पिघल जाता था। युधिष्ठिर ने ययाति से कहा कि वे सब स्त्रियों को जाकर हस्तिनापुर में पहुँचा आवें।

शोकातुर स्त्रियों से पूछा गया तो वे एकदम तैयार हो गईं। ययाति उनको ले जाकर हस्तिनापुर पहुँचा आया। उनको नगर-द्वार पर ही विदुरजी मिले। सब कथा सुनकर उन्होंने धृतराष्ट्र को भी जाकर इस ध्वंसकारी युद्ध की कथा सुनाई।

अश्वत्थामा का सेनापतित्व

दुर्योधन के पतन का समाचार फैलने लगा। अश्वत्थामा उनके पास आये। अश्वत्थामा ने जब देखा कि महाराज दुर्योधन असहाय दशा में जमीन पर पड़े हैं, उनके चारों ओर मिट्टी लगी है, कोई शुश्रूषा करनेवाला पास नहीं है, तो अश्वत्थामा को वह दिन याद हो आये जब कि महाराज दुर्योधन सम्राट् थे। उनके रोब का दबदबा था। किसी को उनसे बातचीत करने का साहस नहीं होता था।

अश्वत्थामा कहने लगा, महाराज ! मैं पाण्डवों की नीचता का कहाँ तक वर्णन करूँ ! उन्होंने दादा को छल से मारा, गुरु के साथ कपट किया। अपने सगे-सम्बन्धियों के साथ भी उन्होंने धर्म-युद्ध नहीं किया। आपको एक क्या, यदि सौ भीम भी आ जाते तो युद्ध में नहीं जीत सकते थे। अच्छा अब मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि चाहे जैसे हो मैं पाण्डवों से उनकी सारी दुष्टताओं का बदला लूँगा।

यह शब्द सुनकर जैसे दुर्योधन के हृदय में नई स्फूर्ति की जागृति हुई।

दुर्योधन ने कृपाचार्य से कहा—हे भगवन् ! मेरी अन्तिम इच्छा है कि आप इनको विधिवत् सेनापति पद दें।

दुर्योधन के कथनानुसार कलश आदि से अश्वत्थामा को सेनापति के पद पर यथाक्रम अभिषिक्त कर दिया गया।

शत्रु नाश का संकेत

अश्वत्थामा, कृपाचार्य, दुर्योधन के पास से चलकर पाण्डवों के वध का उपाय सोचने लगे। सोचते-सोचते उन लोगों को बड़ी रात हो गई। रात हो गई थी इसलिये उस जङ्गल में ही एक पेड़ के नीचे वे लोग सो रहे। अश्वत्थामा तो प्रतिहिंसा की अग्नि से जल रहा था। उसे नींद कैसे आती ?

रात को उसने देखा कि बहुत से कौए पेड़ पर विश्राम कर रहे थे। कौओं ने धीरे-धीरे बोलना बन्द कर दिया। जब मध्य निशा का समय हुआ तो एक उल्लू उस वृक्ष पर आया और किसी कौए की टाँग तोड़ दी; किसी के पर नोच डाले, किसी का सिर काट डाला। धीरे-धीरे इस तरह उसने सारे कौओं को मार डाला।

अश्वत्थामा के मन में एक नई लहर दौड़ गई। उसके मन में यही बात समा गई कि पाण्डवों को इसी तरह मारना चाहिये। उसने अपने मन में विचार किया कि इन पाण्डवों ने भीष्म, कर्ण आदि योद्धाओं को युद्ध में परास्त कर दिया,

तब तो वे अकेले भी नहीं थे, अब तो मैं अकेला भी हूँ और वे पाँच हैं, उनको युद्ध में जीतना तो बड़ा कठिन कार्य होगा! क्यों न मैं भी इस उल्लू की तरह रात में जाकर उनका वध कर डालूँ ? मैं अपने पिता की हत्या का बदला तो ले ही सकता हूँ। यह विचार अश्वत्थामा को इतना पसन्द आया कि उसने अपने इस विचार को प्रकट करने के लिए कृपाचार्य को जगाकर कहा—"देखो भाई पाण्डवों ने जितनी नीचता की है, इन दुष्टों के साथ दुष्टता करने में पाप नहीं होगा।" कृपाचार्य बड़े ध्यान से सुन रहे थे कि अश्वत्थामा कोई नयी तरकीब बता रहा है। परन्तु जब उन्होंने अश्वत्थामा के मुँह से यह सुना कि वह सोते हुए पाण्डवों को मार डालना चाहता है तो उस प्रस्ताव को सुनकर उसने अश्वत्थामा को धिक्कारा।

कृपाचार्य ने अश्वत्थामा को समझाया कि देखो दुर्योधन ने अन्यायपूर्ण नीति पर चलकर सबका नाश करवाया। तुम उस पक्ष में आकर मिल जाने के कारण अन्याय और अधर्म का पक्ष ले रहे हो। सोते हुए वीरों को मारना चाहते हो, क्या यही वीरता है ? मनुष्यता का जरा तो ख्याल करो। यदि तुमको अपने ही मन का करना है तो तुम स्वतन्त्र हो। हम तो ऐसे अन्यायपूर्ण कुकृत्य के लिये कभी सलाह नहीं दे सकते।

अश्वत्थामा इस पर और भी अकड़ कर बोला—तो क्या

आप चाहते हैं कि मैं अपने पितृघातियों से बदला न लूँ ? मैं अपने पितृघातियों को अवश्य मारूँगा।

अश्वत्थामा के हृदय में प्रतिहिंसा की अग्नि धधक रही थी। वह जल्दी से पाण्डव-शिविर की ओर कदम बढ़ाने लगा।

कृपाचार्य ने फिर अश्वत्थामा को समझाने का असफल प्रयास किया। उन्होंने कहा—बेटा, क्यों ब्राह्मणवंश में पैदा होकर अपने कुल को अधर्म और अन्यायपूर्ण कार्य से कलंकित करते हो ? सोते हुए शत्रुओं को मारना घोर अधर्म और नीचता है। तुम द्रोण के पुत्र हो, कम से कम द्रोण के नाम पर कलंक तो मत लगाओ। अश्वत्थामा ने झुंझला कर कहा—"जो अधर्मी हो उसके साथ धर्म करना महा अधर्म है। पाण्डवों ने सैकड़ों बार छल किया है। आज तुम उन्हीं लोगों के साथ धर्म का बर्ताव करने को कहते हो। चाहे प्रायश्चित्त मुझको कुछ भी क्यों न भोगना पड़े, मैं पाण्डवों से पितृ-हत्या का बदला लिये बिना न रहूँगा।"

ऐसा कह कर अश्वत्थामा पांडवों के शिविर की ओर चल पड़ा। लाचार होकर कृपाचार्य भी उसके साथ हो लिये।

अश्वत्थामा की नीचता

पांडवों के शिविर में पहुँचकर अश्वत्थामा ने देखा कि चारों ओर सन्नाटा है। सब लोग गहरी नींद में सो रहे हैं। अश्वत्थामा ने कृपाचार्य को द्वार पर खड़ा कर दिया और उनसे

कह दिया कि इस द्वार से कोई जीता-जागता न जाने पावे। मौका अच्छा देखकर वह धृष्टद्युम्न के शिविर में घुस गया। जाते ही अश्वत्थामा ने धृष्टद्युम्न की चोटी पकड़ ली और चोटी पकड़ कर जमीन पर दे मारा और लातों से उसको अधमरा कर दिया। धृष्टद्युम्न कुछ कहना ही चाहता था कि अश्वत्थामा उससे कहने लगा—"नीच ! आचार्य की अन्यायपूर्वक हत्या करनेवाले ! उनकी हत्या का फल भोग और उसका मजा ले। धृष्टद्युम्न ने कहा, यदि तुम मुझे मारना ही चाहते हो तो शस्त्र से मारो जिससे मुझको भी गति मिल जावे।

शोर सुनकर सबलोग जाग गये। पहरेदारों ने तो अश्वत्थामा को प्रेत समझा। किसी को यह विश्वास नहीं था कि रात को अश्वत्थामा लड़ने आयेगा।

धृष्टद्युम्न का इस प्रकार वधकर जब अन्य पाञ्चालों के शिविर में दुष्ट अश्वत्थामा गया तो वे सहसा सचेत होकर उठे थे। रात्रि होने के कारण आपस ही में लड़ने लगे। अश्वत्थामा ने मौका पाकर सब पाञ्चाल वीरों को खत्म कर डाला।

अश्वत्थामा ने उसको अपनी बड़ी भारी विजय समझी और पाण्डवों के शिविर की ओर गया। द्रौपदी के पाँचों पुत्र घोर निद्रा में सोये थे। अश्वत्थामा ने उनको ही पाण्डव समझा और उनको मार डाला।

उन्हें मारकर उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने चलते-चलते शिविर में आग लगा दी। इससे पाण्डव सैन्य ने समझा कि कोई आक्रमण हुआ है और सैनिक आपस में ही लड़ने लगे। इससे बड़ी भारी क्षति हुई।

प्रसन्न होता हुआ अश्वत्थामा वापस चला और सोचने लगा कि यह समाचार दुर्योधन को जल्दी से सुना दूँ। इसे सुनाने के लिये उसी समय दुर्योधन के पास अश्वत्थामा चल दिया।

दुर्योधन की मृत्यु

दुर्योधन अपनी अन्तिम घड़ियाँ गिन रहा था। साँस लेना भारी हो गया था। संज्ञा लुप्त हो गई थी।

अश्वत्थामा ने महाराज के कान के पास जाकर कहा—"महाराज, यदि आप जागते हों तो एक शुभ संवाद और सुन लीजिए। अभी हमलोगों ने पाण्डवों और पाञ्चालों को नष्ट कर दिया है। पाण्डव सैन्य का भी बड़ी संख्या में नाश हुआ है।"

यह संवाद सुनकर तो जैसे दुर्योधन जी उठा। उसके आश्चर्य की सीमा न रही। प्रसन्नता से कण्ठ गद्गद् हो गया। उसने बारी-बारी से सबको गले लगाया और अश्वत्थामा की बड़ी प्रशंसा की। दुर्योधन ने मरते-मरते कहा—"जो काम भीष्म, कर्ण, द्रोण न कर सके उसको तुमने

करके दिखा दिया।" इस प्रकार आनन्दातिरेक में दुर्योधन ने अपने प्राण छोड़ दिये।

प्रातःकाल होते-होते दुर्योधन की मृत्यु का समाचार चारों ओर फैल गया। गान्धारी, धृतराष्ट्र सभी शोकसागर में डूब गये।

द्रौपदी की प्रतिज्ञा

धृष्टद्युम्न के सारथि ने भोर होते-होते सारा हाल जाकर युधिष्ठिर को सुनाया तो युधिष्ठिर एकदम अधीर हो गये। जब उन्होंने सचमुच घटनास्थल पर आकर देखा कि सब घटनायें सत्य हैं, तो वे रोने लगे। उन्होंने नकुल, सहदेव को द्रौपदी को बुला लाने की आज्ञा दी।

रात्रि के उस भीषण हत्याकाण्ड में द्रौपदी के भाई और उसी के पुत्र मारे गये। भाई और बेटों को मरा देखकर द्रौपदी छाती पीट-पीट कर रोने लगी। उसने प्रतिज्ञा की कि जब तक मैं अश्वत्थामा को मरा न देख लूँगी तब तक अन्न-जल ग्रहण न करूँगी।

युधिष्ठिर ने जब यह प्रतिज्ञा सुनी तो द्रौपदी से कहने लगे—"क्या पगली हो गई हो? न जाने अश्वत्थामा अब कहाँ भाग गया होगा, हम उसे कहाँ खोजते फिरेंगे?"

द्रौपदी ने कहा—"आर्य! आपने मेरी बात कभी नहीं टाली। जब-जब मैंने आप से कुछ भी कहा, आपने पूरा

किया। आज भी आप मेरे मनोवाञ्छित कार्य को पूर्ण कीजिए। यदि मुझे अश्वत्थामा का सिर प्राप्त नहीं होगा तो मैं भूखों रहकर ही अपने प्राण त्याग दूँगी।''

मणि-हरण

द्रौपदी की बात सुनकर भीम अश्वत्थामा का सिर लाने चल पड़े। श्रीकृष्ण को इस बात का पता चलने पर बड़ी चिन्ता हुई, क्योंकि अश्वत्थामा के पास ऐसा अस्त्र था जिसकी काट भीम के पास न थी। यह समाचार सुनकर युधिष्ठिर, अर्जुनादि सब भीम की सहायता के लिए दौड़े। अकस्मात् अश्वत्थामा को खोजते हुए भीम इन लोगों को रास्ते में ही मिल गये।

इन लोगों को संयोग से मार्ग में व्यासदेव के पास बैठा अश्वत्थामा मिल गया। भीम ने बड़े तिरस्कारसूचक शब्दों में अश्वत्थामा को ललकारा।

भीम की ललकार सुनकर ज्यों ही अश्वत्थामा ने गर्दन ऊपर की तो उसने देखा कि श्रीकृष्ण, अर्जुन, भीम, युधिष्ठिर हैं। अभी तक तो वह निश्चिन्त बैठा था कि उसने रात्रि में सब पाण्डवों को मार डाला है परन्तु उनको जब सामने देखा तो उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

अश्वत्थामा ने अपने को बड़ी भारी विपत्ति में फँसा देखा। उसको कुछ भी ज्ञान न रहा। थोड़ी देर तक तो

वह हतबुद्धि-सा खड़ा रहा, परन्तु फिर ब्रह्मशिरा नामक अस्त्र का उसने सब पाण्डवों के लिये प्रयोग किया। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को महाभयंकर पाशुपतास्त्र छोड़ने के लिये कहा। अर्जुन ने झटपट पाशुपतास्त्र छोड़ दिया। वह बीच में ही जाकर अश्वत्थामा के ब्रह्मशिरा नामक अस्त्र से टकरा गया। उन दोनों के टकराने की तुमुल ध्वनि से पृथ्वीतल गूँज गया।

सृष्टि के संहार की आशंका से व्यासदेव बीच में आकर खड़े हो गये और 'रोको-रोको' की रट लगाने लगे। नारद मुनि ने कहा, "क्या ऐसे अस्त्रों का भी प्रयोग मनुष्य के ऊपर किया जाता है ?"

अर्जुन ने कहा—"महाप्रभु ! यह बाण तो केवल मैंने अपनी रक्षा के लिये छोड़ा है। यदि मैं इस अस्त्र को नहीं छोड़ता तो अब तक हमलोग सब भस्म हो जाते। मैंने तो केवल आत्मरक्षा की है। इसमें मेरा कोई अपराध नहीं।"

अब दोनों से अपना-अपना अस्त्र लौटाने के लिये कहा गया—अर्जुन ने तो बहुत समझाने-बुझाने पर अपना अस्त्र वापस ले लिया, परन्तु अश्वत्थामा चलाया हुआ अस्त्र वापस कैसे ले लिया जाता है, यह न जानता था। तब तो यह निश्चय किया गया कि अश्वत्थामा का बाण तो उत्तरा के गर्भस्थ बच्चे की हत्या करे और अर्जुन के बाण के बदले अश्वत्थामा अपनी मणि निकाल कर दे देवे।

अश्वत्थामा ने बड़ी मुश्किल से पाण्डवों को यह मणि

दी और शेष जीवन व्यासजी के आश्रम में रह कर बिताया ।

पाण्डव लोग अश्वत्थामा की मस्तक-मणि लेकर चले आये । द्रौपदी अश्वत्थामा की मृत्यु का समाचार सुनने की प्रतीक्षा में बैठी थीं । भीम ने द्रौपदी के हाथ में मणि देते हुए कहा—"पाञ्चाली ! हमने अश्वत्थामा को गुरु-पुत्र और ब्राह्मण समझकर छोड़ दिया । अब वह भिखमंगे की तरह जीवन व्यतीत करता है । उसका यह जीवन तो मरने से भी बुरा है ।"

द्रौपदी ने भीम की बात मान ली और मणि से सन्तुष्ट हो गई ।

धृतराष्ट्र का विलाप

महाभारत का युद्ध दुर्योधन के मरने के पश्चात् बन्द हो गया। इस महाभारत के युद्ध में अठारह अक्षौहिणी सेना मारी गई थी। संसार के सभी वीर आकर किसी-न-किसी तरफ से इस युद्ध में सम्मिलित हुए थे। अब वसुन्धरा वीरों से शून्य हो गई। घर-घर में पुत्र, पौत्र, पति, पिता और भ्रातृहीन नारियों का क्रन्दन तथा हृदय-विदारक रोदन होने लगा।

सञ्जय महाराज धृतराष्ट्र को युद्ध की अन्तिम अवस्था से परिचय कराने गये। वहाँ जाकर जैसे ही सञ्जय ने दुर्योधन की मृत्यु का समाचार सुनाया, तो धृतराष्ट्र एकदम शोकाकुल हो गये। अब तक जितने पुत्र मरे थे, उन सबका शोक तो किसी प्रकार दुर्योधन के सहारे से उन्होंने सह लिया, परन्तु जब दुर्योधन स्वयं चल बसा तो धृतराष्ट्र को सौ पुत्रों का दुःख एक साथ होने लगा। शोक के कारण उन्हें कर्त्तव्या-कर्त्तव्य का ज्ञान न रहा। वे हाय दुर्योधन ! हाय पुत्र ! करते हुए गिर पड़े।

अचेतावस्था में वे केवल पांडवों को गाली देते थे। उन्हें इस बात का क्रोध था कि पाण्डवों ने उनके सब पुत्रों को मार डाला।

व्यास, विदुर आदि सब लोगों ने धृतराष्ट्र को समझाया कि अब शोक करना व्यर्थ है। क्षत्रियोचित धर्म से उन्होंने युद्ध में लड़कर प्राण गँवाये हैं। वे सब स्वर्ग के अधिकारी हैं।

स्त्रियों का विलाप

इसके अनन्तर मृत सम्बन्धियों की श्राद्धादि क्रियायें होने लगीं। विदुरजी सब विधवा बहुओं और पुत्रहीना गान्धारी को लेकर कुरुक्षेत्र की ओर चले। कौरव कामिनियों का वह वेश देखकर सबके हृदय में बरबस करुणा का स्रोत उमड़ आता था। जिन स्त्रियों को सूर्य-किरणें स्पर्श नहीं कर सकती थीं, राज्य-लक्ष्मी जिनकी सेवा में तत्पर थी, सौभाग्य-सम्पदाएँ सदा जिनके पैर चूमती थीं, उन्हीं स्त्रियों की आज यह दशा!

जब पाण्डवों ने यह सुना कि धृतराष्ट्र सपरिवार आ रहे हैं तो वे लोग उनसे मिलने आये। साथ में श्रीकृष्ण, युयुत्सु और सात्यकि भी थे। स्त्रियों को देखकर स्त्रियाँ तो तुरन्त रो पड़ती हैं। जब द्रौपदी ने समस्त कौरव स्त्रियों को विलाप करते देखा तो स्वयं भी अन्यान्य स्त्रियों के साथ बड़े शोकपूर्ण स्वर से विलाप करने लगी।

कृष्ण का कौशल

पाण्डवों ने वृद्ध धृतराष्ट्र के निकट जाकर अपना-अपना परिचय देते हुए प्रणाम किया। पहिले तो वे आशीर्वाद ही न देते थे, परन्तु श्रीकृष्ण के कहने पर उन्होंने आशीर्वाद दिया।

फिर धृतराष्ट्र ने कहा—"मेरे पुत्र तो बड़े दुष्ट और अन्यायी थे। उन्होंने जैसी करनी की, उसका फल भोगा। युद्ध में जैसी वीरता का परिचय भीम ने दिया, वैसा किसी ने नहीं दिया। भीम कहाँ है ? जरा मैं उसे अपने गले से लगाकर अपनी छाती ठण्डी कर लूँ।"

श्रीकृष्ण बूढ़े के मन के भाव को जान गये। उन्होंने समझ लिया कि बूढ़े के मन में पाप है। भीम की एक लोहे की मूर्ति थी। श्रीकृष्ण ने उसी को धृतराष्ट्र के सामने खिसका दिया। धृतराष्ट्र उस मूर्ति को ही भीम समझकर गले मिलने लगे। धृतराष्ट्र का गले मिलने के बहाने भीम को मार डालने का इरादा था। भीम की मूर्ति को इतनी जोर से दबाया कि वह लोहे की मूर्ति भी चकनाचूर हो गई। जितने लोग वहाँ थे सबने दाँतों तले अँगुली दबा ली।

अंधे होने के कारण धृतराष्ट्र कृष्ण की चालाकी न समझ सके। उन्होंने यह कहकर अपने मन में सन्तोष कर लिया कि मैंने पुत्रहन्ता को मार डाला। फिर थोड़ा-सा बाहरी

शोक दिखाने के लिये उन्होंने भीम की याद की। हाय भीम, कह कर चिल्लाने लगे। मानों अपने किये पर पश्चात्ताप करते हों।

तब श्रीकृष्ण ने कहा—महाराज, आप शोक न कीजिये। आपने जिसको अभी चूर कर डाला है, वह भीम नहीं, भीम की मूर्ति थी। मैं तो पहिले ही समझ गया था। क्या भीम ही सचमुच आपके पुत्रों को मारनेवाला है? आप तो यह स्वयं जानते हैं कि युद्ध किसने उपस्थित किया था। युद्ध में कोई न कोई तो अवश्य ही मरता। अस्तु, इसमें सारा अपराध युद्ध उपस्थित करनेवाले का है। वही इस विकट नरसंहार का दोषी है।

धृतराष्ट्र अपने इस कार्य से बड़े लज्जित हुए।

गान्धारी का शाप

व्यासजी ने गान्धारी को पहिले से ही समझा-बुझा कर उसकी मति पाण्डवों के अनुकूल कर दी थी। परन्तु पुत्र-शोक कहीं बातों से जाता है! श्रीकृष्ण, युधिष्ठिर आदि को साथ लिये गान्धारी के पास गये। सब लोगों ने विधिवत् प्रणाम किया। भीम तो बड़े उद्धत थे ही। उन्होंने कहा—माताजी, मैं आपके पुत्रों को मारनेवाला भीम नमस्कार करता हूँ। गान्धारी के मन में विशेष दुःख हुआ। उसने कहा बेटा यदि मेरे १०० पुत्रों में एक भी जीवित रहता तो वह हम अन्धे और बुड्ढों की हाथ की लकड़ी हो जाता,

परन्तु अब तो तुम्हीं हमारे पुत्र हो। परमात्मा तुम लोगों को सदा सुखी रखे।

जब श्रीकृष्ण की पारी आयी तो गान्धारी शोकातुर हो उठी। उसने उनको शाप दिया कि जिस तरह तुमने अपनी कुटिल नीति से लड़ा-भिड़ाकर मेरे कुल का नाश किया है, उसी तरह एक दिन यादव-कुल का भी नाश होगा।

इसके बाद पाण्डव माता कुन्ती के पास गये। जब माता ने देखा कि पाँचों भाई समर-समुद्र को तैर कर सकुशल चले आये हैं, तो उन्हें बड़ा आनन्द हुआ। परन्तु द्रौपदी से उसके अपने पुत्र और भाइयों के मरने की कथा सुनकर कुन्ती एकदम शोकसागर में डूब गई।

जब गान्धारी ने देखा कि द्रौपदी और कुन्ती शोक से विह्वल होकर रो रही हैं, तो उसने समझाना शुरू किया। द्रौपदी! शोक न करो। क्षत्राणी तो युद्ध में मरने के लिये ही पुत्र पैदा करती हैं। मेरे सौ बेटे और तुम्हारे पुत्र सभी इस समय स्वर्ग में आनन्दपूर्वक विहार करते होंगे।

मृतकों की दाह-क्रिया

फिर सबलोग मिलकर समरभूमि की ओर आये। वहाँ पहुँचकर अपने-अपने सगे-सम्बन्धियों की लाश को खोजने लगे। स्त्रियाँ अपने-अपने पति और पुत्र की लाशों को देखकर अपना-अपना सिर धुनती हुई करुण विलाप करने लगीं। युधिष्ठिर के प्रबन्ध से दाह संस्कार के लिये

लकड़ी, चन्दन इत्यादि समस्त वस्तुओं को भृत्यगणों ने वहीं प्रस्तुत कर दिया। वीरों का वह विशाल पर्वत देखते-देखते अग्नि में भस्म हो गया।

कर्ण-परिचय

सब की दाह-क्रिया समाप्त कर तर्पण करने के लिये सब लोग नदी किनारे आये। तर्पण का कार्य जारी था। इसी समय कुन्ती ने आकर युधिष्ठिर से कहा, पुत्र ! तुम कर्ण को अवश्य जलोदक देना, क्योंकि वह तुम्हारा बड़ा भाई था।

यह सुन कर पाण्डवों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। युधिष्ठिर ने बड़े आश्चर्य से पूछा, क्या कर्ण हमारे भाई थे ? माँ ! आज तक तुमने यह बात छिपा कर बड़ा भारी अनर्थ किया।

यह सुन कर कुन्ती की आँखों से आँसुओं की धारा बह निकली। उसका कण्ठ भर आया। उसने अपने को सम्हालते हुए कहा, "पुत्र ! जिस वीर धनुर्धारी को लोग सारथि का पुत्र और राधा की सन्तान जानते थे, जो अकेला ही सारी पाण्डव सेना के साथ युद्ध करता हुआ सूर्य के समान चमकता था, जो कभी रणभूमि में पीठ नहीं दिखाता था, वह तेजस्वी कर्ण मेरे ही गर्भ से उत्पन्न हुआ था, उस समय मैं अविवाहिता थी। कर्ण की उत्पत्ति सूर्य के तेज से हुई थी। वह कवच-कुण्डल धारण किए हुए ही उत्पन्न हुआ था। उस समय मैंने उसको लज्जा के भय से नदी में विर्सजित कर दिया था। यही कारण है कि आज तक यह बात तुम लोगों से छिपी रही।

मैंने युद्ध आरम्भ होने के पूर्व उसको समझाया कि वह युद्ध में भाग न ले, परन्तु वह न माना । मैंने उससे पाण्डवों के पक्ष में आ जाने के लिये भी प्रार्थना की, परन्तु वह न माना । जब मैंने सुना कि अर्जुन और कर्ण का युद्ध होने वाला है, तब मैं कर्ण के पास गई और युद्ध से विमुख होने के लिये कहा, परन्तु तब भी वह न माना । तब मैं समझ गई कि इन दो वीरों में से किसी एक का नाश अवश्य होगा और अन्त में कर्ण इस संसार को सूना करके चला ही गया ।

अब तुम उसकी आत्मा के सन्तोष के लिये उसको अपना बड़ा भाई समझ कर तिलाञ्जलि दे देना ।

युधिष्ठिर को इससे बड़ा दुःख हुआ । उन्होंने स्त्री-जाति को यह शाप दिया कि उसके पेट में अब कोई बात नहीं पचेगी ।

तदन्तर माता की इच्छानुसार युधिष्ठिर ने कर्ण को भी तिलाञ्जलि दी । युधिष्ठिर ने जिनका कोई भी शेष न रह गया था और जो अनाथ थे, उन लोगों को भी तिलाञ्जलि दी। एक लाख प्रेतात्माओं को तिलाञ्जलि देना कोई सरल कार्य न था । महाराज युधिष्ठिर ने बड़ी श्रद्धा से यह कार्य सम्पन्न किया । इसके बाद वे अपने भाई तथा अन्य सहचरों के साथ घर लौट आये और वहाँ आकर भोज इत्यादि कराया, जिससे प्रेतात्माओं की सद्‌गति हो ।

●

युधिष्ठिर का वैराग्य

महासमर समाप्त हो चुका था। महाराज युधिष्ठिर की यह प्रतिज्ञा थी कि यदि मेरा एक भी भाई मर जायगा तो मैं राजपाट छोड़ कर वन को चला जाऊँगा। यह जानकर कि कर्ण उनका भाई ही था उनका हृदय बड़े दुःख और ग्लानि से भर गया। उनको राज्य से घृणा और संसार से वैराग्य होने लगा। अन्त में महाराज युधिष्ठिर से न रहा गया और उन्होंने अपने मनोगत भावों को व्यक्त करने के लिए अपने भाइयों को बुलाकर—"भाइयो! हमने इस राज्य को सारे हित-मित्रों, सगे-सम्बन्धियों को मार कर पाया है। क्या हम इस राज्य से सुख की आशा रखें? इस राज्यलोभ के कारण न जाने कितनी अबलाओं का सौभाग्य-सिन्दूर मिट गया। कितनी माताओं की गोद खाली हो गई। इस सर्वनाश को करके हमने इहलोक और परलोक दोनों को बिगाड़ा है। अब मेरी इच्छा होती है कि मैं इस पाप का प्रायश्चित्त करूँ और वन में जाकर तपस्या करूँ। मेरा तो विश्वास है कि यह पाप बिना तपस्या के दूर नहीं होगा।"

महाराज युधिष्ठिर की बात सुन कर भाइयों को बड़ा आश्चर्य हुआ। भाइयों ने कहा—"महाराज ! जो राजा अपनी प्रजा का विधिवत् पालन करता है, वह सब यज्ञों, तपों का फल पा जाता है। आपका कर्तव्य यही है कि आप विधिवत् प्रजा का पालन करें। इसी में आप को शान्ति मिलेगी।"

व्यास के बोध-वचन

सब लोग उन्हें समझा कर हार गये, पर वे न माने। इसी समय कहीं से व्यासजी आ गये। व्यासजी को जब सब हाल मालूम हुआ तो उन्होंने कहा—"युधिष्ठिर ! मनुष्य के क्षण-भंगुर जीवन का क्या ठिकाना ? फिर युद्ध में मरना बड़े गौरव की बात है। तुम्हारे भाइयों ने अधर्मियों से राज्य लिया है, उसको थोड़े दिन धर्मपूर्वक भोग कर अपने भाइयों की अभिलाषा पूर्ण करो।"

युधिष्ठिर ने कहा—"महाराज आपकी आज्ञा शिरोधार्य है, परन्तु आप मुझे यह बता दीजिए कि मनुष्य राज्य और धर्म का काम एक साथ कैसे कर सकता है ?"

धर्म-राज्य की प्रतिष्ठा

अन्त में व्यासजी का उपदेश मान कर महाराज युधिष्ठिर राज्य-पालन करने के लिए प्रस्तुत हो गये। वे हस्तिनापुर आये और दीन-दुखियों को मुँह माँगा इनाम दिया।

सिंहासन पर बैठते ही धर्मराज ने भीम को युवराज बनाया। परम नीतिज्ञ विदुर को प्रधानमन्त्री, अर्जुन को सन्धि-विग्रहमन्त्री, सञ्जय को राजस्व मन्त्री, नकुल को सेनानायक और सहदेव को राज्य के रक्षापति के पद पर नियुक्त किया। देवसेवा का कार्य महाराजा धौम्य को सौंपा गया। यह सब होते हुए भी युधिष्ठिर ने यह स्पष्ट आज्ञा दी कि महाराज धृतराष्ट्र की आज्ञा सबसे पहले पूरी की जाय।

इसी तरह दिन-पर-दिन बीतते गये। एक दिन महाराज युधिष्ठिर ने कहा—"अब सूर्य के उत्तरायण होने में बहुत दिन नहीं है। अतएव दादा भीष्म के पास जाकर हमें उपदेश ग्रहण करना चाहिये। युधिष्ठिर की यह बात सुनकर सब लोग प्रस्थान के लिए तैयार हो गये।

भीष्म का उपदेश

भीष्म शरशैय्या पर पड़े थे। बहुत से लोग उनके चारों तरफ बैठे थे। युधिष्ठिर ने उनको दूर से देखा और पैदल ही उनके पास गये। भीष्म को सादर अभिवादन करके बोले—"पितामह! मेरे चित्त पर इस भयानक नर-संहार का बहुत खराब प्रभाव हुआ है। मुझे यह राज्य भारस्वरूप मालूम पड़ रहा है। आप कृपा कर मुझे यह उपाय बतलायें कि राज एवं धर्म दोनों का निर्वाह कैसे करूँ?"

युधिष्ठिर का यह प्रश्न सुनकर भीष्म ने कहा—"क्षत्रिय के लिए राजधर्म ही सबसे बड़ा धर्म है। जैसे अंकुश हाथी को

गलत रास्ते पर चलने से रोकता है, ठीक उसी तरह राजा का कर्त्तव्य है कि मनुष्यसमाज को मर्यादा के बाहर न जाने दे। इसलिये तुम राज्यधर्म का ही पालन करो। इसी से तुम्हें लोक-यश और परलोक में सद्‌गति प्राप्त होगी।"

युधिष्ठिर ने फिर वर्णाश्रम धर्म के ऊपर एक प्रश्न किया। उसका उत्तर देते हुए भीष्म ने कहा—"हे धर्म-राज! क्रोध कदापि न करना। शत्रु को भी क्षमा करना। व्यर्थ किसी से वैर न लेना। ब्राह्मण का धर्म वेद पढ़ना-पढ़ाना, यज्ञ करना-कराना, क्षत्रियों का दान देना, यज्ञ करना, प्रजा पालन करना, युद्ध करना, वैश्य का कर्त्तव्य कृषि-वाणिज्य द्वारा धनोपार्जन करना तथा शूद्र की सेवा करना है।"

युधिष्ठिर को इससे शान्ति मिली।

अन्य उपदेश

महात्मा भीष्म के उपदेश से युधिष्ठिर को तृप्ति नहीं हुई। उन्होंने भाग्य और परिश्रम के बारे में प्रश्न पूछा— भीष्म ने कहा—पुरुषार्थ और भाग्य दो भिन्न वस्तुएँ नहीं हैं, पुरुषार्थ प्रधान है। मनुष्य को पुरुषार्थ के लिये प्रयत्न करना चाहिये।

राजधर्म के ऊपर प्रश्न करने पर भीम ने बताया कि— राजा का मुख्य धर्म प्रजा-पालन करना ही है। राजा को यथायोग्य व्यवहार करना चाहिये।

भीष्म का स्वर्गवास

माघ मास का शुक्ल पक्ष आ गया। सूर्य भी उत्तरायण हो गये।

ठीक समय होते-होते भीष्म के शरीर से बाण अपने आप निकलकर गिरने लगे। शरीर पर घाव का कहीं चिह्न तक न रहा। उनकी प्राणवायु ब्रह्माण्ड भेदकर निकल गई।

उनके शरीर का दाह संस्कार किया गया। दाह-संस्कार समाप्त होने पर सब लोग हस्तिनापुर लौट आये।

अश्वमेध-पर्व

राज्य करते-करते पाण्डवों की यह इच्छा हुई कि अश्व-मेध यज्ञ किया जाय। व्यासजी ने उनको हिमालय पर पड़े हुए बहुत से धन का सदुपयोग करने को कहा। इस समय उत्तरा के गर्भ से बाणविद्ध लड़का पैदा हो गया। उसको श्रीकृष्ण ने अपनी चतुराई से जीवित कर लिया। उसका नाम परीक्षित था।

अब यज्ञ की तैयारी होने लगी। दिग्विजय के लिए घोड़ा छोड़ा गया। एक वर्ष बाद अर्जुन सब लोगों को जीत कर लौट आये। वासुदेव ने अपने योग्य शिष्यों द्वारा यज्ञ सम्पन्न कराया। यज्ञ में बहुत धन दान दिया।

आश्रमवासिक-पर्व

धृतराष्ट्र का वन-गमन

धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर को बुलाकर अपनी इच्छा प्रकट की। कार्तिक मास की पूर्णिमा को धृतराष्ट्र, गांधारी और सञ्जय को लेकर वन के लिए चल दिये।

नगर के सब लोग उन्हें बहुत दूर तक पहुँचाने गये। धृतराष्ट्र के वन जाने से युधिष्ठिर बड़े दुःखी रहने लगे और उन्होंने एक दिन धृतराष्ट्र के दर्शन की इच्छा की। वहाँ जाकर विधिवत् प्रणाम करने के पश्चात् युधिष्ठिर ने विदुर को पूछा। विदुर आते हुए दिखाई दिये, पर एक बार सबको देखकर लौट गये। युधिष्ठिर उनको बुलाते ही रह गये, किन्तु उन्होंने योगबल से अपने प्राण छोड़ दिये।

यदुकुल का नाश

राज्य में सब लोग सुखी थे। उन्हें अब इधर-उधर की व्यर्थ की बातें सूझने लगीं। एक दिन छोकरों ने शाम्ब को स्त्रीवेश में मुनियों के आगे ले जाकर पूछा—"महाराज ! इसके गर्भ से क्या उत्पन्न होगा ? ऋषि-मुनियों को यह अच्छा न लगा, उन्होंने कहा कि इससे यादव-कुल का नाश करनेवाला पैदा होगा।"

शाम्ब के पेट से मूसल निकला। श्रीकृष्णजी ने उसको चूर-चूर कर समुद्र में फेंक देने की सलाह दी।

एक दिन मजाक में सात्यकि ने कृतवर्मा से कहा—"क्यों जी ! सोते हुए पांडवों को क्यों मारा ?"

कृतवर्मा बोला—"तुमने जो ध्यानस्थ भूरिश्रवा का सिर काट लिया था।"

बस इसी बात पर सात्यकि ने कृतवर्मा का सिर उड़ा दिया।

श्रीकृष्ण ने यह देखा तो उनको बड़ी चिन्ता हुई और

उन्होंने दारुक को भेज कर अर्जुन को यादव-कुल की स्त्रियों की रक्षा के लिए बुलाया।

इधर बलराम को योगनिद्रा में निद्रित देख श्रीकृष्ण ने कहा, भाई मैं अभी आता हूँ। इतना कहकर वे द्वारिका गये और वहाँ जाकर उन्होंने वसुदेव को यदुकुल के नाश का हाल सुनाया और वहाँ से बलराम के पास लौट आये तो देखा कि बलराम प्राण त्याग चुके हैं। श्रीकृष्ण बड़े दुःखी हुए। वे उसी पेड़ के नीचे बैठ गये। इतने में ही एक व्याध ने ऐसा तीर मारा कि श्रीकृष्णजी स्वर्ग सिधार गये।

यादव स्त्रियों का अपहरण

अर्जुन ने जब यादवकुल के नाश का समाचार सुना तो वे बड़े दुःखित हुए और स्त्रियों को लाने के लिए द्वारका चल दिये। लौटते समय रास्ते में अर्जुन को डाकुओं ने घेर लिया। वे यादव स्त्रियों को भगाकर ले गये और सब धन लूट लिया। अब अर्जुन ने देखा कि हाथों में शक्ति नहीं रह गई है। व्यासजी ने उन्हें स्वर्ग जाने की सलाह दी।

महाप्रस्थान

व्यास के कथनानुसार पाण्डव स्वर्ग की ओर चल पड़े। मार्ग में एक व्यक्ति ने आकर अपने को अग्नि बताया और अर्जुन से गाण्डीव धनुष माँगा; अर्जुन ने उसे दे दिया।

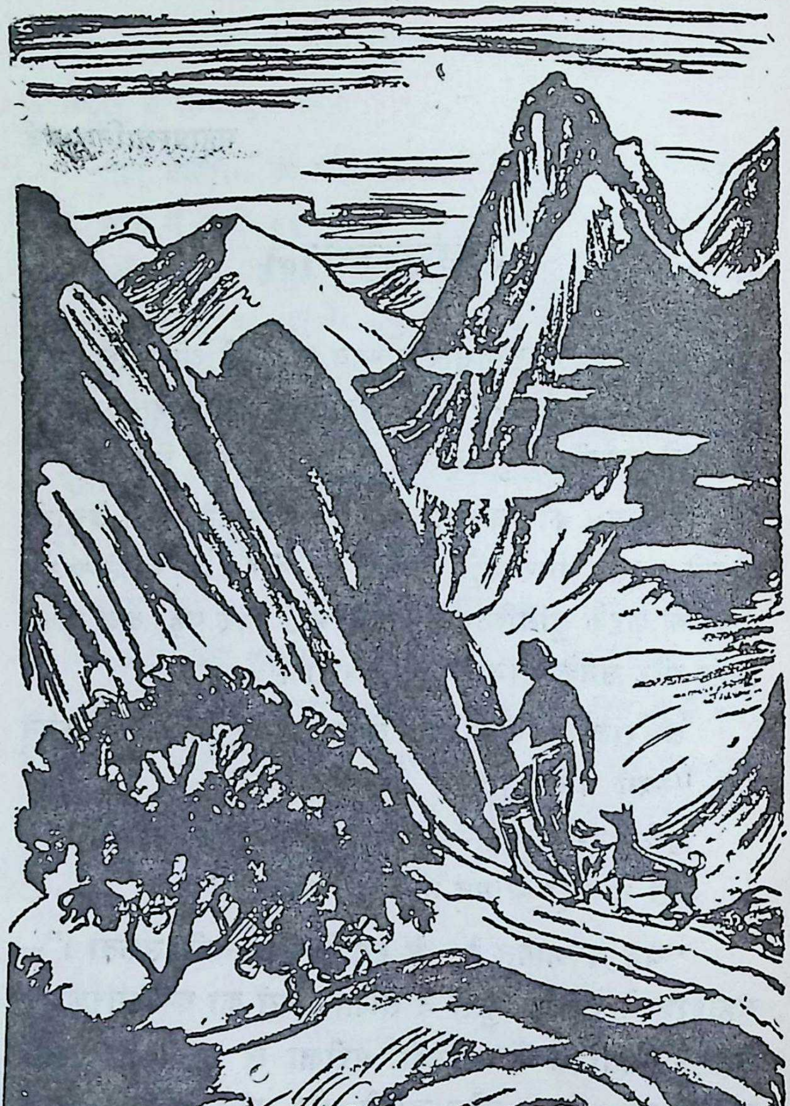
हिमालय की बर्फीली जमीन पर चलते-चलते बेचारी द्रौपदी सहसा गिर पड़ी। मार्ग में धीरे-धीरे चलते-चलते एक-एक करके युधिष्ठिर के चारों भाई गिर पड़े, अब युधिष्ठिर और उनके साथ कुत्ता रह गया।

धर्मराज के पास एक विमान आया और दूत कहने लगे, "स्वर्ग चलिये।"

युधिष्ठिर ने कहा—"मेरे साथ यह कुत्ता भी है।"

दूत ने कहा—"यह नहीं जा सकता।"

"यह शरणागत है, मैं इसको छोड़ नहीं सकता।"—महाराज ने कहा। कुत्ते ने साक्षात् धर्म का रूप धारण कर कहा—"महाराज मैं आपकी परीक्षा ले रहा था। आप उत्तीर्ण हुए। आप सदेह जाइये और अपने सगे-सम्बन्धियों से मिलिये।"



महाप्रस्थान (पृष्ठ ११७)

नरक-दर्शन

महाराज युधिष्ठिर ने स्वर्ग में देखा कि एक जगह दुर्योधनादि भ्रातागण देवताओं के साथ बैठे हुए आनन्द कर रहे हैं। उन्होंने अपने चारों भाई तथा कर्ण को वहाँ न देखा तो बड़े क्रोधित हुए।

तब देवर्षि नारद ने उनसे कहा कि दुर्योधन को स्वर्ग में इसलिए स्थान मिला है कि वह समर में मरा है।

इसके बाद देवर्षि नारद की आज्ञा से एक देवदूत युधिष्ठिर को वहाँ ले चला, जहाँ उनके अन्य भाई थे। वह रास्ता भयावह था—हर तरफ रक्त और मांस नजर आता था। कीड़े-मकोड़े और मक्खियों से रास्ता भरा था।

पास ही नदी में से आग की लपटें निकल रही थीं। पर्वताकार प्रेत मनुष्यों की खोपड़ियों से गेंद खेल रहे थे।

ऐसे भयङ्कर स्थानों को देखकर युधिष्ठिर घबराये। जब उन्होंने कर्ण सहित अपने सब भ्राताओं को वहीं देखा तो स्वर्ग लौटने से इनकार कर दिया।

देवराज इन्द्र ने जब यह बात सुनी तो उसी समय देवताओं के साथ उस स्थान पर आ पहुँचे। उनके आते ही वह काल्पनिक नरक आँखों के सामने से अदृश्य हो गया। दिव्य प्रकाश और सुन्दर सौरभ चारों तरफ भर गया।

यह देख युधिष्ठिर जब अत्यन्त आश्चर्य मानने लगे तो देवराज इन्द्र ने उनसे कहा, "महाराज! संसार में रहते समय जब थोड़े बहुत पाप आपने तथा आपके भाइयों ने किये थे, उसी के लिए आपको नरक का दर्शन करना पड़ा और थोड़े से पुण्य के लिए दुर्योधन आदि ने कुछ समय तक स्वर्ग का सुख भोग लिया। अब आप स्वर्ग में चलकर वहाँ सदा के लिए निवास करिये।"

वहाँ पर मन्दाकिनी की शुद्ध और पवित्र धारा में स्नान कर युधिष्ठिर ने मानव-देह का त्याग किया और स्वर्गीय देह धारण कर अपने इष्ट-मित्रों से जा मिले।

हिन्दी प्रचारक संस्थान

वाराणसी